संयम स्वर्ण महोत्सव (२०१७-१८) की विनम्र प्रस्तुति क्र० ३५

महाकवि आचार्य विद्यासागर विरचित
काव्यात्मक रचनाएँ एवं स्तुतियाँ

निर्बन्ध गुरु के छन्द

प्रकाशक
जैन विद्यापीठ
सागर (म० प्र०)

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

निर्बन्ध गुरु के छन्द

[महाकवि आचार्य विद्यासागर विरचित पद्य काव्य एवं स्तुतियाँ]

संस्करण : २८ जून, २०१७
(आषाढ़ सुदी पंचमी, वीर निर्वाण संवत्
आवृत्ति २५४३): ११००
वेबसाइट : www.vidyasagar.guru

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान

जैन विद्यापीठ

भाग्योदय तीर्थ, सागर (म॰ प्र॰) चलित दूरभाष ७५८२-९८६-२२२

ईमेल : jainvidyapeeth@gmail.com

मुद्रक

विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिसर्स

प्लाट नं॰ ४५, सेक्टर-एफ , इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा

भोपाल (म॰ प्र॰) ९४२५००५६२४

non copy right

अधिकार : किसी को भी प्रकाशित करने का अधिकार है, किन्तु स्वरूप, ग्रन्थ नाम, लेखक, सम्पादक एवं स्तर परिवर्तन न करें, हम आपके सहयोग के लिए तत्पर हैं, प्रकाशन के पूर्व हमसे लिखित अनुमति अवश्य प्राप्त करें। आप इसे डाउनलोड भी कर सकते हैं।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आद्य वक्तव्य

युग बीतते हैं, सृष्टियाँ बदलती हैं, दृष्टियों में भी परिवर्तन आता है। कई युगदृष्टा जन्म लेते हैं। अनेकों की सिर्फ स्मृतियाँ शेष रहती हैं, लेकिन कुछ व्यक्तित्व अपनी अमर गाथाओं को चिरस्थाई बना देते हैं। उन्हीं महापुरुषों का जीवन स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाता है, जो असंख्य जनमानस के जीवन को घने तिमिर से निकालकर उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित कर देते हैं। ऐसे ही निरीह, निर्लिप्त, निरपेक्ष, अनियत विहारी एवं स्वावलम्बी जीवन जीने वाले युगपुरुषों की सर्वोच्च श्रेणी में नाम आता है दिगम्बर जैनाचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज का, जिन्होंने स्वेच्छा से अपने जीवन को पूर्ण वीतरागमय बनाया। त्याग और तपस्या से स्वयं को शृंगारित किया। स्वयं के रूप को संयम के ढाँचे में ढाला। अनुशासन को अपनी ढाल बनाया और तैयार कर दी हजारों संयमी युवाओं की सुगठित धर्मसेना। सैकड़ों मुनिराज, आर्यिकाएँ, ब्रह्मचारी भाई-बहिनें। जो उनकी छवि मात्र को निहार-निहार कर चल पड़े घर-द्वार छोड़ उनके जैसा बनने के लिए। स्वयं चिद्रूप, चिन्मय स्वरूप बने और अनेक चैतन्य कृतियों का सृजन करते चले गए जो आज भी अनवरत जारी है। इतना ही नहीं अनेक भव्य श्रावकों की सल्लेखना कराकर हमेशा-हमेशा के लिए भव-भ्रमण से मुक्ति का सोपान भी प्रदान किया है।

महामनीषी, प्रज्ञासम्पन्न गुरुवर की कलम से अनेक भाषाओं में अनुदित मूकमाटी जैसे क्रान्तिकारी-आध्यात्मिक-महाकाव्य का सृजन हुआ। जिस पर अनेक साहित्यकारों ने अपनी कलम चलायी परिणामतः मूकमाटी मीमांसा के तीन खण्ड प्रकाशित हुए। आपके व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर लगभग ५० शोधार्थियों ने डी॰ लिट्॰, पी-एच॰ डी॰ की उपाधि प्राप्त की।

अनेक भाषाओं के ज्ञाता आचार्य भगवन् की कलम से जहाँ अनेक ग्रन्थों के पद्यानुवाद किए गए तो वहीं नवीन संस्कृत और हिन्दी भाषा में छन्दोबद्ध रचनायें भी सृजित की गई। सम्पूर्ण विद्वत्जगत् आपके साहित्य

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

का वाचन कर अचंभित हो जाता है। एक ओर अत्यन्त निस्पृही, वीतरागी छवि तो दूसरी ओर मुख से निर्झरित होती अमृतध्वनि को शब्दों की बजाय हृदय से ही समझना श्रेयस्कर होता है।

प्राचीन जीर्ण-शीर्ण पड़े उपेक्षित तीर्थक्षेत्रों पर वर्षायोग, शीतकाल एवं ग्रीष्मकाल में प्रवास करने से समस्त तीर्थक्षेत्र पुनर्जागृत हो गए। श्रावकवृन्द अब आये दिन तीर्थों की वंदनार्थ घरों से निकलने लगे और प्रारम्भ हो गई जीर्णोद्धार की महती परम्परा। प्रतिभास्थलियों जैसे शैक्षणिक संस्थान, भाग्योदय तीर्थ जैसा चिकित्सा सेवा संस्थान, मूकप्राणियों के संरक्षणार्थ सैकड़ों गौशालाएँ, भारत को इण्डिया नहीं 'भारत' ही कहो का नारा, स्वरोजगार के तहत 'पूरी मैत्री' और 'हथकरघा' जैसे वस्त्रोद्योग की प्रेरणा देने वाले सम्पूर्ण जगत् के आप इकलौते और अलबेले संत हैं।

कितना लिखा जाये आपके बारे में शब्द बौने और कलम पंगु हो जाती है, लेकिन भाव विश्राम लेने का नाम ही नहीं लेते।

यह वर्ष आपका मुनि दीक्षा का स्वर्णिम पचासवाँ वर्ष है। भारतीय समुदाय का स्वर्णिम काल है यह। आपके स्वर्णिम आभामण्डल तले यह वसुधा भी स्वयं को स्वर्णमयी बना लेना चाहती है। आपकी एक-एक पदचाप उसे धन्य कर रही है। आपका एक-एक शब्द कृतकृत्य कर रहा है। एक नई रोशनी और ऊर्जा से भर गया है हर वह व्यक्ति जिसने क्षणभर को भी आपकी पावन निश्रा में श्वांसें ली हैं।

आपकी प्रज्ञा से प्रस्फुटित साहित्य आचार्य परम्परा की महान् धरोहर है। आचार्य धरसेनस्वामी, आचार्य समन्तभद्रस्वामी, आचार्य अकलंकदेव, आचार्य विद्यानन्दिस्वामी, आचार्य पूज्यपादस्वामी जैसे श्रुतपारगी आचार्यों की शृंखला को ही गुरुनामगुरु आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज, तदुपरान्त आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने यथावत् प्रतिपादित करते हुए श्रमणसंस्कृति की इस पावन धरोहर को चिरस्थायी बना दिया है।

यही कारण है कि आज भारतवर्षीय विद्वत्वर्ग, श्रेष्ठीवर्ग एवं श्रावकसमूह आचार्यप्रवर की साहित्यिक कृतियों को प्रकाशित कर श्रावकों

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

के हाथों में पहुँचाने का संकल्प ले चुका है। केवल आचार्य भगवन् द्वारा सृजित कृतियाँ ही नहीं बल्कि संयम स्वर्ण महोत्सव २०१७-१८ के इस पावन निमित्त को पाकर प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थों का भी प्रकाशन जैन विद्यापीठ द्वारा किया जा रहा है।

आचार्य गुरुदेव ने एक ओर जहाँ आचार्य प्रणीत मूल ग्रन्थों का पद्यानुवाद सरल हिन्दी भाषा में करके श्रुतप्रेमियों के लिए अनुपम उपहार प्रदान किया है वहीं दूसरी ओर संस्कृत भाषा के स्वरचित शतकों का भी पद्यानुवाद किया।

आपने स्वतंत्र दोहावलियों की भी रचना की है। ये दोहावली कबीर, रहीम, बिहारी, सतसई की रचना की याद दिलाती हैं तथा इस युग में जैनदर्शन के आध्यात्मिक और सैद्धान्तिक पहलुओं को समाहित करने वाली अनुपम रचना हैं। इन दोहावली के साथ कुछ स्तुतियाँ जो कि आचार्य शान्तिसागरजी महाराज आदि आचार्यों की हैं, वे भी इस कृति 'निर्बन्ध गुरु के छन्द' में संकलित किये गये हैं। जिनमें कि अपने गुरु के गुरुओं के प्रति भक्ति का भाव आचार्यश्री के हृदय में अद्भुत झलकता है। इसके साथ ही अन्य रचनाएँ बंगला, अंग्रेजी, कन्नड़ भाषा में आचार्य भगवन् ने समय-समय पर की हैं, उन सबको भी इस कृति में समाहित किया गया है। पाठकों के लिए यह प्रकाशन अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

उक्त समस्त ग्रन्थों का शुद्ध रीति से प्रकाशन अत्यन्त दुरूह कार्य है। इस संशोधन आदि के कार्य को पूर्ण करने में संघस्थ मुनिराज, आर्यिका माताजी, ब्रह्मचारी भाई-बहिनों ने अपना अमूल्य सहयोग दिया। उन्हें जिनवाणी माँ की सेवा का अपूर्व अवसर मिला, जो सातिशय पुण्यार्जन तथा कर्मनिर्जरा का साधन बना।

जैन विद्यापीठ आप सभी के प्रति कृतज्ञता से ओतप्रोत है और आभार व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द खोजने में असमर्थ है।

गुरुचरणचंचरीक

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अनुक्रमणिका

शारदानुति	.....	१-४
आचार्य स्तुति सरोज		
आचार्य शान्तिसागर स्तुति	.....	५-१२
आचार्य वीरसागर स्तुति	.....	१३-२१
आचार्य शिवसागर स्तुति	.....	२२-२६
आचार्य ज्ञानसागर स्तुति	.....	२७-३१
श्रमण शतक	.....	३२-४९
भावना शतक	.....	५०-६७
निरंजन शतक	.....	६८-८४
परीषहजय शतक	.....	८५-१०१
सुनीति शतक	.....	१०२-११८
चैतन्य चन्द्रोदय	.....	११९-१३५
निजानुभव शतक	.....	१३६-१५३
मुक्तक शतक	.....	१५४-१६२
दोहा स्तुति शतक	.....	१६३-१७३
पूर्णोदय शतक	.....	१७४-१८३
सर्वोदय शतक	.....	१८४-१९३
सूर्योदय शतक	.....	१९४-२०३
दोहा दोहन	.....	२०४-२१५
आध्यात्मिक भक्ति गीत	.....	२१६-२३२
दशधर्म दोहे	.....	२३३-२४०
स्फुट रचनाएँ	.....	२४१-२४८

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

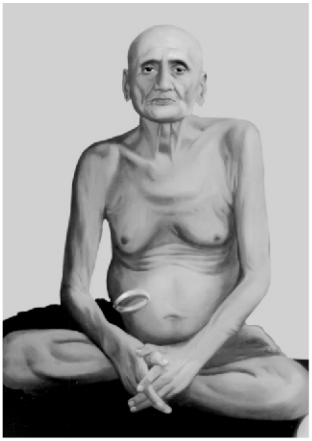

चारित्र चक्रवर्ती
आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज

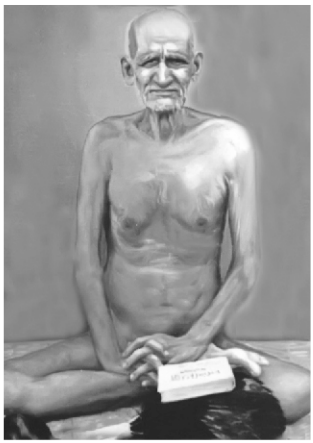

परम पूज्य
आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज

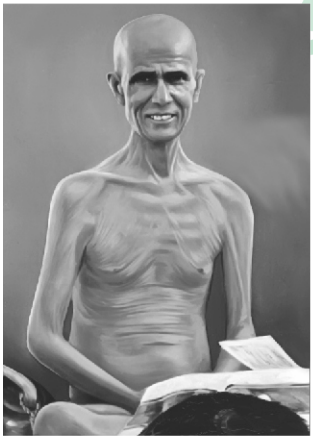

परम पूज्य
आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज

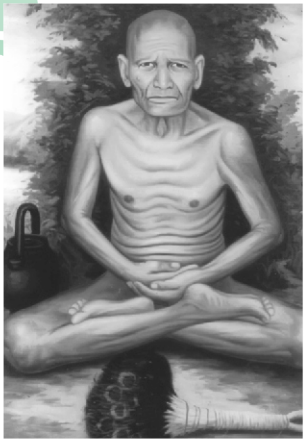

परम पूज्य
आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

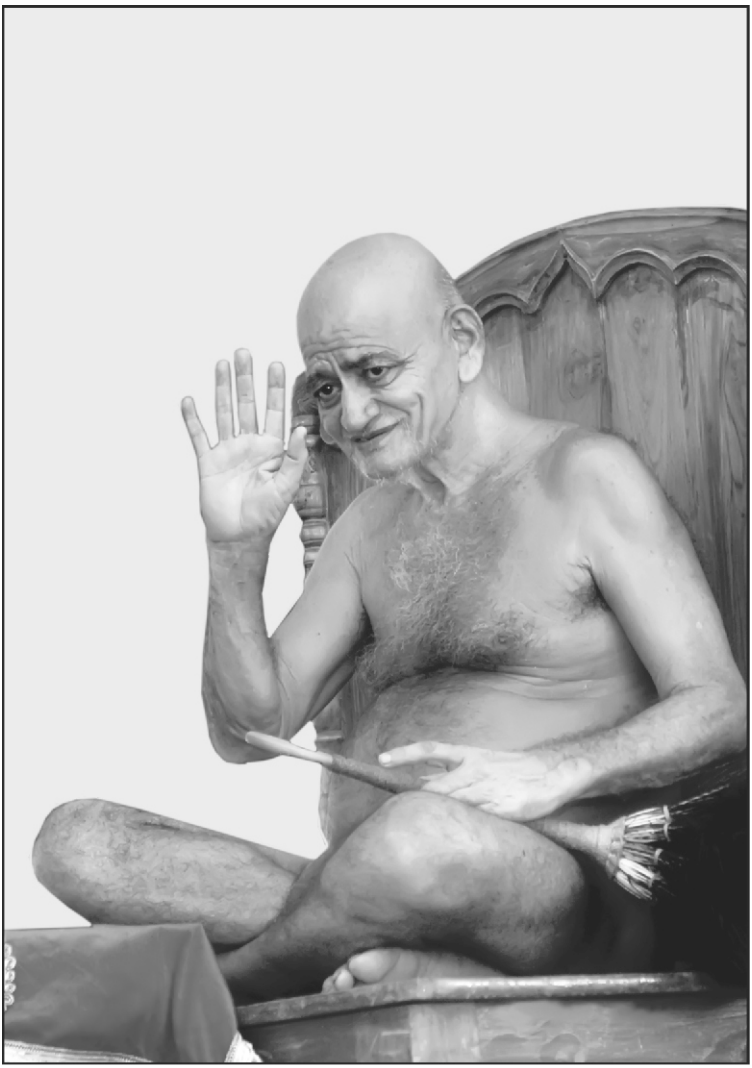

संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

शारदानुति

(चौपाई)

जिनवरानननीरजनिर्गते, गणधरैः पुनरादरसंश्रिते।
सकलसत्त्वहिताय वितानिते, तदनु तैरिति हे! किल शारदे ॥१॥

सकलमानवमोदविधायिनि, मधुरभाषिणिसुन्दररूपिणि।
गतमले! द्वयलोकसुधारिणि, मम मुखे वस पाप-विदारिणि ॥२॥

असि सदा हि विषक्षयकारिणि, भुवि कुदृष्ट्हयेऽति विरागिणी।
कुरु कृपां करुणे गतमानिनी! मयि विभोः पदपंकजषट्पदे ॥३॥

जिन मुख पंकज से निकली हो,
सविनय ऋषियों से बिखरी हो।
सकल लोक का हित हो, तम को
हरो शारदे! वर दो हमको ॥१॥

मानव मन को सुधा पिलाती,
इह पर भव में सुधार लाती।
कोकिल कण्ठा रूप सलोना,
मम मुख में बस! बसो लसो ना ॥२॥

विषय दृष्टि की नागिन कंपती,
तुम करुणानी प्रभु गुण जपती।
प्रभु पद पंकज रत मुझ अलि पर,
वीणा लेकर, करुणा कर कर ॥३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

उपलजो निजभावमहो यदा, सुरसयोगत आशु विहाय सः।
कनकभावमुपैति समेमि किम्, न शुचिभावमहं तव योगतः ॥४॥

जगति भारति! तेऽक्षियुगं खलु, नयमिषेण कुमार्गरतागमम्।
नयति हास्यपदं न तदास्मयम्, अयि! वचोमृतपूर्ण सरोवरे ॥५॥

वृषजलेन वरेण वृषापगे, शमय तापमहो! मम दुस्सहम्।
सुखमुपैमि निजीयमपूर्वकम्, द्रुतमहं लघुधीरथ येन हि ॥६॥

सुरस-योग से लोहा नीला,
बनता जिस विध स्वर्णिम पीला।
मैं भी उस विध तव संगति से,
क्यों न बनूँ शुचि प्रभु सन्मति से ॥४॥

वचनामृत पूरित तुम सर हो,
नयन युगल तव सुनय प्रखर हो।
मिथ्या आगम का उपहासा,
करे भारती यहाँ प्रकाशा ॥५॥

धर्मामृत की वर्षा करके,
ताप हरो मुझे हर्षा करके।
सुखमय जीवन अथाह मम हो,
धर्मामृत की प्रवाह तुम हो ॥६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

शिरसि ते नहि कृष्णतमाः कचाः, त्वयि न ते निलयं परिगम्य वै।
परमतामसका बहिरागताः, इति सरस्वति! हे! किल मे वचः ॥७॥

विगतकल्मषभावनिकेतने, तव कृता वरभक्तिरियं सदा।
विभवदा शिवदा परिभूयता, इति ममास्ति शिशोश्शुभकामना ॥८॥

शशिकलेव सिताऽसि विनिर्मला, विकचकं जजयक्षमलोचने।
यदि न मानवकोऽति सुखायते, त्वदवलोकनमात्रतया कथम् ॥९॥

यूँ मानूँ तव सर के सारे,
कुटिल कुटिलतम केश न काले।
तुम में आश्रय जब न पाईं,
पाप पंक्तियाँ बाहर आईं ॥७॥

प्रशम भाव की भवन बनी हो,
भक्त बना तव भक्ति बनी यों।
भव मिट, शिव हो, रहे काम ना,
इस शिशु की बस यही कामना ॥८॥

कमल हारते तुम दृग लख कर,
लसी शशी सी शुभे! सुधाकर!
हमें बता दो यदि ना यों हो,
तुमको लख मुनि प्रमुदित क्यों हो? ॥९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

शशिकला वदनप्रभया जिता, नयनहारितया तव शारदे।
सपदि वै गतमानतयेति सा, नखमिषेण तवांघ्रियुगंश्रिता ॥१०॥

श्रुतियुगं तवमान मिषेण वै, वितथमानमतं परिदूष्य च।
जिनमते गदितं यतिभिः परै-र्यदिति सूचयतीह वरं हि तत् ॥११॥

इह सदाऽऽस्वनितं शुभ कर्मणि, भवतु मे चरणं च सुवर्त्मनि।
जगति वंद्यत एव सरस्वती, तनुधिया सदया ह्यथ या मया ॥१२॥

तव मुख की आभा से जीती,
चन्द्र चाँदनी फिर भी जीती।
तभी शारदे! तुम पद सेवा,
पद नख मिष करती स्वयमेवा ॥१०॥

श्रवण युगल तव प्रमाण दी है,
कहता, पर-मत प्रमाण नी है।
कहा गया यतियों से प्यारा,
प्रमाण जिनमत है आधारा ॥११॥

कर्तव्यों में मेरा मन हो,
शिव पथ पर ही सदा चरण हो।
सरस्वती! तव सदय शरण हो,
मन्द मती का तुम्हें नमन हो ॥१२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज
के पावन-चरणों में सविनय श्रद्धांजलि

(वसन्ततिलका छन्द)

'मैसूर राज्य' अविभाज्य, विराजता औ,
शोभामयी-नयन मंजु सुदीखता जो।
त्यों शोभता, मुदित भारत-मेदिनी में,
ज्यों शोभता, मधुप-फुल्ल सरोजिनी में ॥१॥

है 'बेलगाँव' सुविशाल जिला निराला,
सौन्दर्य-पूर्ण जिसमें पथ है विशाला।
अभ्रंलिहा परम उन्नत सौधमाला,
जो है वहाँ अमित उज्ज्वल औ उजाला ॥२॥

है पास 'भोज' इसके नयनाभिराम,
राकेन्दु - सा अवनि में लसता ललाम।
श्रीभाल में ललित कुंकुम शोभता ज्यों,
औ भोज भी अवनि मध्य सुशोभता त्यों ॥३॥

आके मिली विपुल निर्मल नीर वाली,
हैं भोज में सरित दो सु-पयोज वाली।
विख्यात है इक सुनो वर 'दूध गंगा',
दूजी अहो! सरस शान्त सु 'वेदगंगा' ॥४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

श्रीमान् महान् विनयवान् बलवान् सुधीमान्,
श्री 'भीमगौड़' मनुजोत्तम औ दयावान्।
सत्यात्म थे, कुटिल आचरणज्ञ ना थे,
जो भोज में कृषि कला अभिविज्ञ वा थे ॥५॥

नीतिज्ञ थे, सदय थे, सुपरोपकारी,
पुण्यात्म थे सकल मानव हर्षकारी।
जो लीन धर्म अरु अर्थ सुकाम में थे,
औ वीरनाथ वृष के वर भक्त यों थे ॥६॥

श्री भीमगौड़ ललना अभि सत्यरूपा,
थी काय कान्ति जिसकी रति-सी अनूपा।
सीता समा, गुणवती, वर नारि रत्ना,
जो थी यहाँ नित नितान्त सुनीतिमग्ना ॥७॥

नाना कला निपुण थी मृदुभाषिणी थी
शोभावती मृगदृगी गतमानिनी थी।
लोकोत्तरा छविमयी तनवाहिनी थी,
सर्वंसहा-अवनि-सी समतामयी थी ॥८॥

मन्दोदरी सम सुनारि सुलक्षिणी थी,
श्री प्राणनाथ-मद-आलस-हारिणी थी।
हँसानना शशिकला मनमोहिनी थी,
लक्ष्मी समान जग सिंहकटी सती थी ॥९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

हीरे समा नयन रम्य सुदिव्य अच्छे,
थे सूर्य चन्द्र सम तेज, सुशान्त बच्चे।
जन्मे दया भरित नारि सुकूँख से थे,
दोनों अहो! परम सुन्दर लाड़ले थे ॥१०॥

था ज्येष्ठ पुत्र अतिहृष्ट सु-देवगौड़ा,
छोटा बड़ा चतुर बालक 'सातगौड़ा'।
दोनों अहो! सुकुल के यश-कोश ही थे,
या प्रेम के परम-पावन-सौध ही थे ॥११॥

होता विवाह पर शैशवकाल में ही,
पाती प्रिया अनुज की द्रुत मृत्यु यों ही।
बीती कई तदुपरान्त अहर्निशायें,
जागी तदा नव-विवाह सुयोजनायें ॥१२॥

तो देख दृश्य वह बालक सोचता है,
है पंक ही नव विवाह न रोचता है।
दुर्भाग्य से सघन-कर्दम में फँसा था,
सौभाग्य से बच गया, यह तीव्र साता ॥१३॥

माँ! मात्र एक ललना चिर से बची है,
वैसी न नीरज मुखी अब लों मिली है।
हो चाहती मम विवाह मुझे बता दो,
जल्दी मुझे अहह! अंब! शिवांगना दो ॥१४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

इत्थं कहा द्रुत तदा वच भी स्व-माँ को,
निर्भीक भीम-सुत ने सुमृगाक्षिणी को।
जो भीमगौड़ पति की अनुगामिनी थी,
औ कुन्दिता-मुकुलिता-दुखवाहिनी थी ॥१५॥

काँटे मुझे दिख रहे घर में अहो! माँ,
चाहूँ नहीं घर निवास, अतः सुनो माँ।
है जैनधर्म जग सार, पुनीत भी है,
माता! अतः मुनि बनूँ यह ही सही है ॥१६॥

तू जायगा यदि अरण्य अरे सबेरे,
उत्फुल्ल-लोक-कल-लोचन-कंज मेरे
बेटा! अरे! लहलहा कल ना रहेंगे,
होंगे न उल्लसित औ न कभी खिलेंगे ॥१७॥

रोती, सती, बिलखती, गत-हर्षिणी थी,
जो सातगौड़ जननी, गजगामिनी थी।
बोली निजीय सुत को नलिनीमुखी यों,
ओ पुत्र! सन्मुख तथा रख दी व्यथा यों ॥१८॥

माता अहो! भव भयानक-काननी में,
कोई नहीं शरण है इस मेदिनी में।
सद्धर्म छोड़ सब ही दुखदायिनी है,
वाणी जिनेन्द्र कथिता सुखदायिनी है ॥१९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

माधुर्य-पूर्ण समयोचित भारती को,
माँ को कही सजल-लोचन-वाहिनी को।
रोती तथा बिलखती उर पीट लेती,
जो बीच बीच रुकती, फिर श्वाँस लेती ॥२०॥

विद्रोह, मोह, निज-देह-विमोह छोड़ा,
आगे सुमोक्ष-पथ से अति नेह जोड़ा।
'देवेन्द्रकीर्ति' यति, से वर भक्ति साथ,
दीक्षा गही, वर लिया, वर मुक्ति पाथ ॥२१॥

गम्भीर, पूर्ण, सुविशाल-शरीरधारी,
संसार-त्रस्त जन के द्रुत आर्तहारी।
औ वंश-राष्ट्र-पुर देश सुमाननीय,
जो थे सु-'शान्ति' यतिनायक वन्दनीय ॥२२॥

विद्वेष की न इसमें कुछ भी निशानी,
सत्प्रेम के सदन थे, पर थे न मानी।
अत्यन्त जो लसित थी, इनमें (अ) नुकम्पा,
आशा तथा मुकुलिता अरु कोष चंपा ॥२३॥

थे दूर नारि कुल से, अति-भीरु यों थे,
औ शील-सुन्दर-रमापति किन्तु जो थे!
की आपने न पर या वृष की उपेक्षा
थी आपको नित शिवालय की अपेक्षा ॥२४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

स्वामी, तितिक्षु, न बुभुक्षु, मुमुक्षु जो थे,
मोक्षेच्छु रक्षक, न भक्षक, दक्ष औ थे।
यानी, सुधी, विमल-मानस-आत्मवादी
शुद्धात्म के अनुभवी, तुम अप्रमादी ॥२५॥

निश्चिंत हो, निडर निश्चल, नित्य भारी,
थे ध्यान-मौन धरते तप औ करारी।
थे शीत ताप सहते, गहते न मान,
तो सर्वदा स्वरस का करते सुपान ॥२६॥

शालीनतामय सुजीवन आपका था,
आलस्य, हास्य विनिवर्जित शस्य औ था।
थी आपमें सरसता व कृपालुता थी,
औ आप में नित नितान्त कृतज्ञता थी ॥२७॥

थे आप शिष्ट, वृषनिष्ठ, वरिष्ठयोगी,
संतुष्ट थे, गुणगरिष्ठ, बलिष्ठ यों भी।
थे अन्तरंग, बहिरंग, निसंग नंगे,
इत्थं न हो यदि, कुकर्म नहीं कटेंगे ॥२८॥

था स्वच्छ, अच्छ व अतुच्छ चरित्र तेरा,
था जीवनातिभजनीय पवित्र तेरा।
ना कृश्य देह तव जो तप साधना से,
यों चाहते मिलन आप शिवांगना से ॥२९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

प्रायः कदाचरण युक्त अहो धरा थी,
सन्मार्ग रूढ मुनि मूर्ति न पूर्व में थी।
चारित्र का नव नवीन पुनीत पंथ,
जो भी यहाँ दिख रहा तव देन संत ॥३०॥

ज्ञानी विशारद सुशर्म पिपासु साधु,
औ जो विशाल नर-नारि समूह चारु ।
सारे विनीत तव पाद-सु नीरजों में,
आसीन थे भ्रमर से निशि में, दिवा में ॥३१॥

संसार सागर असार अपार खार,
गम्भीर पीर सहता इह बार-बार।
भारी कदाचरण भार विमोह धार,
धिक् धिक् अतः अबुध जीव हुआ न पार ॥३२॥

थे शेडवाल गुरु जी इक बार आये,
इत्थं अहो सकल मानव को सुनाये।
''भारी प्रभाव मुझपै तव भारती का,
देखो पड़ा इसलिये मुनि हूँ अभी का'' ॥३३॥

अच्छे बुरे सब सदा न कभी रहे हैं,
औ जन्म भी मरण भी अनिवार्य ही है।
आचार्यवर्य गुरु वर्य समाधि लेके,
सानन्द देह तज, 'शान्ति' गये अकेले ॥३४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

छाई अतः दुख निशा ललना-जनों में,
औ खिन्नता, मलिनता, भयता नरों में।
आमोद हास सविलास विनोद सारे,
है लुप्त मंगल सुवाद्य अभी सितारे ॥३५॥

सारी विशाल जनता महि में दुखी है,
चिन्ता-सरोवर-निमज्जित आज भी है।
चर्चा अपार चलती दिन-रैन ऐसी,
आई भयानक परिस्थिति हाय! कैसी? ॥३६॥

फैली व्यथा, मलिनता, जनता-मुखों में
हा! हा! मची रुदन भी नर-नारियों में।
क्रीड़ा उमंग तज के वय बाल बाला,
बैठी अभी वदन को करके सुकाला ॥३७॥

हे! तात!! घात!! पविपात!! हुआ यहाँ पै,
आचार्यवर्य गुरुवर्य गये कहाँ पै?
जन्मे सुरेन्द्रपुर में दिवि में जहाँ पै,
हूँ भेजता 'स्तुति सरोज' अतः वहाँ पै ॥३८॥

संतोष-कोष गत रोष 'सुशान्ति-सिन्धू',
मैं बार-बार तव पाद सरोज वन्दूँ।
हूँ ''ज्ञान का प्रथम शिष्य'', अवश्य बाल,
'विद्या' सुशान्ति पद में धरता स्व-भाल ॥३९॥

॥ चारित्र चक्रवर्ती आचार्य गुरुवर श्री शान्तिसागराय नमः॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आचार्य श्री वीरसागर महाराज

के पावन-चरणों में सविनय श्रद्धांजलि

(वसन्ततिलका छन्द)

अत्यन्त है ललित 'हैदरबाद राज'
साक्षात् यहाँ मुदित भारत-शीश ताज।
'औरंगबाद' सुविशाल जिला निराला,
देखो जहाँ कलह का न कभी सवाला ॥१॥

है 'ईर' सुन्दर यहाँ इसके समाना,
है ही नहीं सुरपुरी दिवि में सुभाना।
आते सदा निरखने इसको सुजाना,
शोभामयी परम-वैभव का खजाना ॥२॥

जो श्री जिनालय समुन्नत ईर में हैं,
मानों कहीं नभ रमा मुख चूमते हैं।
प्रक्षाल पूजन तथा जिन गीत गाते,
तो कर्म को सब मुमुक्षु जहाँ खपाते ॥३॥

जो श्रेष्ठ सेठ वृष-निष्ठ सुईर में थे,
दानी निरन्तर सुलीन सुधर्म में थे।
था 'रामचन्द्र' जिनका वह श्राव्य नाम,
नामानुरूप अभिराम गुणैकधाम ॥४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

धर्मात्म थे, सदय थे, सुपरोपकारी,
षट्कर्म लीन नित थे बुध चित्तहारी।
संतोष के सदन थे विनयी कृपालु,
सत्कार्य में रत कृतज्ञ, सदा दयालु ॥५॥

श्री रामचन्द्र ललना मनमोहिनी थी,
सीता समा, परम-शील-शिरोमणी थी।
शोभावती मदन को प्रमदा रती थी,
चन्द्रानना, परम-भाग्यवती, सती थी ॥६॥

हीरे समा-नयन रम्य सुदिव्य अच्छे,
थे सूर्य-चन्द्र-सम तेज सुशांत अच्छे।
जन्मे दया भरित-नारि सुकूँख से थे,
दोनों अहो! परम सुन्दर लाडले थे ॥७॥

जो जेष्ठ, पुष्ट अति हृष्ट 'गुलाबचन्द्र'
'हीरादिलाल' लघु भाग्यवती सुनन्द।
दोनों अहो! सुकुल के यश-कोष ही थे,
या प्रेम के परम-पावन-सौध ही थे ॥८॥

तू यौवनोपवन में स्थित दर्शनीय,
तेरा विवाह करना अति श्लाघनीय।
तू हो गया अब बड़ा अवलोकनीय,
नक्षत्र बीच शशि ज्यों, अति शोभनीय ॥९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आयोजना विविध है, बहु है विशेष
सासू मुझे अब रहा बननाऽवशेष।
ऐसा निजीय लघु बालक को सुनाया,
मानो सुभाग्यवति ने मन को दिखाया ॥१०॥

चाहूँ नहीं विभव अम्ब! तथा विवाह,
कैसे फसूँ विषय में, मम है न चाह।
मेरा विवाह इस जीवन में न होगा।
जो आपका यतन व्यर्थ अवश्य होगा ॥११॥

ऐसा विचार सुत का सुन भाग्य माता,
रोती कहीं, उदय में मम क्यों असाता?
ऐसा कुमार कह रो मत हा! मुझे तू,
क्यों दे रहा दुसह दुःख वृथा मुझे तू ॥१२॥

छूटी तभी युगल लोचन नीर-धार,
हा हा! हुई व्यथित भाग्यवती अपार।
रोती घनी बिलखती उर पीट लेती,
औ बीच-बीच रुक के चिर श्वाँस लेती ॥१३॥

संसार के विषय तो विष हैं सुनो माँ,
क्या मारना चह रही मुझको कहो माँ!
अत्यन्त दुःख सहता मम जीव आया,
भारी मुझे विषय सेवन ने सताया ॥१४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

है नारकी नरक में मुझको बनाया,
माता! निगोद तक भी उसने दिखाया
यों हीरलाल जिसने निज-भाव गाया,
वैराग्यपूर्ण उपदेश उन्हें सुनाया ॥१५॥

संसार को विषम जान अनित्य मान,
औ निन्द्य हेय निजघातक दुःख जान।
आगे वहाँ चल दिया वह हीरलाल,
थे शांतिसागर जहाँ गुरु जो निहाल ॥१६॥

हीरादिलाल वह जा गुरु 'शांति' पास,
दीक्षा गही तब किया निज में निवास।
तो 'वीरसागर' सुसार्थक नाम पाया,
वीरत्व को जगत सम्मुख भी दिखाया ॥१७॥

नादान, दीन मतिहीन, न धर्महीन,
स्वामी ! अतः स्तुति लिखूँ तव मैं नवीन।
तो आपके स्तवन से निज को लखूँगा,
मैं अंत में करम काट सुखी बनूँगा ॥१८॥

श्री वीरसागर सुधीर महान वीर,
थे नीर-राशि सम आप सदा गभीर।
स्वामी सुदूर करते जग-जीव-पीर,
पीते सदा परम-पावन धर्म-नीर ॥१९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

स्त्री आपकी परम सुन्दर जो क्षमा थी।
सेवा सदैव तव थी करती रमा-सी।
स्वामी! सहर्ष उस संग सदा विनोद,
मोक्षार्थ मात्र करते, गहते प्रमोद ॥२०॥

आहार मात्र तप वर्धन हेतु लेते,
थे एक बार तन को तन का हि देते।
मिष्ठान्न को पर कभी मन में न लाते,
स्वामी नहीं इसलिए रस-राज खाते ॥२१॥

छ्यालीस दोष तज के अरु मौन धार,
जैसा मिले अशन ले यह योग सार।
शास्त्रानुकूल वह भी दिन में खड़े हो,
लेते अतः परम-पूज्य हुए बड़े हो ॥२२॥

आधार थे सकल मानव के यहाँ पै,
जैसे सुनींव घर की रहती धरा पै।
निर्दोष था तब पुनीत अखंड शील,
था आपका हृदय तो अतिशांत झील ॥२३॥

श्रद्धान जैन मत का तुमको सदा था,
सद्ज्ञान 'शान्ति' गुरु से तुमको मिला था।
चारित्र तो तब यहाँ किसको छिपा था,
तेरे झुके चरण में मम मात्र माथा ॥२४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

त्रैलोक्य को मदन यद्यपि जीत पाया,
पै आपके वह नहीं पग पास आया।
क्या सिंह के निकट भी गज यूथ जाता?
जाके कभी स्वबल से उसको सताता? ॥२५॥

शुद्धात्म में रत सदा, दिन में न सोते,
थे किन्तु आप दिन-रैन कुकर्म खोते।
थी आपकी परम मार्दव धर्म-शय्या,
थे नाव के मम यहाँ तुम ही खिवैया ॥२६॥

निर्मेघ-नील-नभ में शशि-बिंब जैसा,
शोभायमान तव जीवन नित्य वैसा।
स्वामी कभी न पर दोष उछालते थे,
वे बार-बार पर में गुण ढूँढ़ते थे ॥२७॥

आराध्य की सतत थे करते सुभक्ति,
कैसे मिले उस बिना निज को सुमुक्ति।
तेरी अतः कठिन दुर्लभ साधना थी,
थी स्वर्ग की न तुमको, शिव-कामना थी ॥२८॥

स्वाध्याय लीन रहते निज दोष धोते,
साधर्मि को लख सदा परितृप्त होते।
आराधनामय हुताशन से जलाते,
कालुष्य राग-तृण को तब आत्म ध्याते ॥२९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

निःस्वार्थतामय सुजीवन आपका था,
मिथ्यात्व क्षोभ अरु लोभ विहीन भी था।
उत्तुंग मेरु गिरि सादृश कंपहीन,
थे नित्य ध्यान धरते तप में सुलीन ॥३०॥

थे बीस-आठ गुणधारक अप्रमादी,
थी आपने सकल ग्रन्थि अहो! हटा दी।
अत्यन्त शांत, गत-क्लांत, नितान्त शस्य,
थे आप, हैं सब तुम्हें नमते मनुष्य ॥३१॥

थे भद्र! भव्य, अघनाशक, प्रेम-धाम,
था द्वेष का न तुममें कुछ भी विराम।
संतोष से हृदय पूरित आपका था,
कौटिल्य से विकल नाम न पाप का था ॥३२॥

वात्सल्य था हृदय में, पर था न शल्य,
स्वामी अतः अवनि में तुम तोष-कल्य।
आरम्भ, दम्भ मय था न चरित्र तेरा,
तेरे रहे चरण में यह शीश मेरा ॥३३॥

आदर्श से विमल, उज्ज्वल थे प्रशस्त,
दुर्ध्यान से रहित थे, नित आत्म-व्यस्त।
विद्यानुमंडित रहे जग-दुःख-हारी,
'विद्या' न दर्शन किया तव खेद भारी!! ॥३४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

था आप में सकल-संयम ओत-प्रोत,
संसार में तरण-तारण आप पोत।
की आपने न कब भी पर की अवज्ञा,
टाली सु-शांति गुरु की न कदापि आज्ञा ॥३५॥

देते कभी न रिपु को अभिशाप आप,
लाते नहीं हृदय में परिताप पाप।
स्वामी कभी समय का न कियाऽपलाप,
आलस्य त्याग, जपते जिन-इन्द्र जाप ॥३६॥

थे आप शिष्ट, वृष-निष्ठ, वरिष्ठ योगी,
संतुष्ट औ गुण-गरिष्ठ, बलिष्ठ यों भी।
थे अन्तरंग-बहिरंग निसंग नंगे,
इत्थं न हो यदि कुकर्म नहीं कटेंगे ॥३७॥

सूई समान व्यवहार करो सभी ही,
कैंची समान व्यवहार नहीं कभी भी।
ऐसा सुभाषण सदा सबको सुनाते,
श्री वीर-नाथ-पथ को सबको दिखाते ॥३८॥

थे आपके प्रथम शिष्य 'शिव शर्म योगी,
दूजे सुपूज्य 'जयसागरजी' निरोगी।
हैं विद्यमान 'श्रुतसागर सिद्ध मूर्ति,
औ'पद्म''सन्मति'मुनीश्वर'धर्म'स्फूर्ति ॥३९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अच्छे बुरे सब सदा न कभी रहे हैं,
तो जन्म भी मरण भी अनिवार्य ही है।
आचार्य-वर्य, गुरु वर्य समाधि ले के,
सानन्द देह तज 'वीर' गये अकेले ॥४०॥

हे तात! घात!! पविपात!! हुआ यहाँ पै,
आचार्यवर्य गुरुवर्य गये कहाँ पै?
जन्मे सुरेन्द्र-पुर में, दिवि में जहाँ पै,
हूँ भेजता 'स्तुति-सरोज' अतः वहाँ पै ॥४१॥

श्री वीरसागर सुभव्य-सरोज बन्धु,
मैं बार-बार तव-पाद-पयोज वंदूँ॥
हूँ 'ज्ञान' का प्रथम-शिष्य अवश्य बाल,
'विद्या' सुवीर-पद में धरता स्वभाल ॥४२॥

॥ आचार्यगुरुवरश्रीवीरसागराय नमः॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आचार्य श्री शिवसागर महाराज

के पावन-चरणों में सविनय श्रद्धांजलि

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

'औरंगाबाद' सुरपुर-सा, अत्यन्त जो दर्शनीय,
शोभावाला, निकट उसके, भूरि जो शोभनीय।
छोटा सा है 'अडपुर' जहाँ, न्यायमार्गाभिरूढ़,
धर्मात्मा हैं, जनगण अहो! जो रहे हैं अमूढ़ ॥१॥

धर्मात्मा थे, इस अड़पुरी, में 'सु-नेमी' सुधी थे,
पुण्यात्मा थे, अरु सदय थे, प्रेम काऽऽगार भी थे।
दानी औ थे, नर कुशल थे, द्वेष से दूर भी थे,
श्रद्धानी थे, वृषभवृष के, मोद के पुंज भी थे ॥२॥

तन्वंगी थी, वर मृगदृगी, और थी नारि रत्ना,
रत्नों में जो, परम अरुणान्वीत जैसा सुपन्ना।
या मानो थी, गुरु तम रसी-ली यथा यों सुगन्ना,
नेमी की थी, 'दगड़ललना', जो सदा नीतिमग्ना ॥३॥

हीरा से भी, परमरुचिवा, ला हिरालाल बच्चा,
जन्मा था जो, उन नृवर से, था तथा भूरि सच्चा।
कांति ज्योती, कल वदन की, नेमिपुत्रांग की थी,
वैसी शोभा, नयन रुचिरा, कृष्ण की भी नहीं थी ॥४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

धीरे धीरे, शिशुपन टला, जो अतिल्हादकारी,
आई दौड़ी, दगड़-सुत में जो जवानी करारी।
प्रायः सारे, तव वदन को, देख के जो कुँवारी,
होती थी वे, कुसुमशर के, काम के हा शिकारी ॥५॥

बेटा तू तो, अब शिशु नहीं, तू बड़ा हो गया है,
बेटा तेरा, यह समय तो दर्प का आ गया है।
ज्यों माँ बोली,अरु पितर भी, स्वीय हीरा रवी को,
त्यों ही बोला, उचित वच भी, नेमि सूनू स्व-माँ को ॥६॥

देखो माँ जो, इक सुललना, जो बची है सदा से,
मेरी शादी, यदि हि करना, चाहती तो मुदा से।
मैं राजी हूँ, द्रुत तुम करो, मोक्ष-रूपी रमा से,
ऐसा बोला, परम सुकृती, नेमि सूनू स्व माँ से ॥७॥

मेरा जी तो, शिव युवति से, मेल है चाहता माँ!
वैसी नारी, अब तक नहीं, देखने को मिली माँ।
ऐसी स्त्री की, इस अवनि में, है नहीं प्रोपमा माँ!
तो कैसे मैं, इस भवन में, जी सकूँ मोद से माँ ॥८॥

धारा भारी, सजल दृग से, मोचती नेमि-रामा,
रोती बोली, अति बिलखती, नेमिकान्ताविरामा।
सासू तो मैं, इस सदन में, हो रहूँ एक बार,
ऐसी इच्छा, मम हृदय में हो रही बार-बार ॥९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

प्यारे बेटा! सुन वचन तो, तू कहाँ जा रहा है,
मेरा जी तो, तव विरह से, कष्ट हा! पा रहा है।
एकाकी तू, वन गहन में, हा! न जा लाल मेरा,
कैसा होता, सुतप तपना, खिन्न भी काय तेरा ॥१०॥

जावेगा तो यदि कुंवर तू, प्राण मेरे चलेंगे,
मेरे दोनों, दृग जलज तो, जो कभी न खिलेंगे।
मेरी काया, किसलय-समा, शुष्कता को वरेगी,
या तो हा! हा! लघु समय में, कांतिहीना दिखेगी ॥११॥

देखो माँ जी, भव विपिन में, हाय! तेरा न मेरा,
प्रायः सारे, बुद-बुद समा, औ तथा पुत्र तेरा।
मैं तो माँ जी, श्रमण बन के, धर्म का स्वाद लूँगा,
दीक्षा लेके, सु शमदम से, दिव्य आत्मा लखूँगा ॥१२॥

मीठी वाणी, सुरस भरिता, भूरि माँ को सुनाया,
औ भी अच्छे, वचन कह के, धैर्य माँ को दिलाया।
माताजी के, स्मित वचन से, दुःख को भी दबाया,
प्रायः माँ को, जिन धरम का, पाठ भी औ पढ़ाया ॥१३॥

नाता तोड़ा, स्वजन-चय का, भूरि जो कष्टदायी,
सारा छोड़ा, विषय विष को, जो अति क्लान्तदायी।
आगे देखो, परम गुरु से, 'वीर सिन्धु' यती से,
दीक्षा लेके, 'शिव मुनि' हुआ, मोद पाया वहीं से ॥१४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भव्यात्मा थे, मुनिगणमुखी, थे अतः साधु नेता,
शान्ति के थे, निलय गुरु जी, दर्प के थे विजेता।
आचार्य श्री, शिवपथरति, थे बड़ेऽध्यात्मवेत्ता।
सत्यात्मा थे, करण-नग के, भी बड़े वे सुभेत्ता ॥१५॥

शुद्धात्मा के, तुम अनुभवी, थे अतः-अप्रमादी,
संतोषी थे, वृष रसिक थे, औ अनेकान्तवादी।
स्वप्नों में भी, न तुम करते, दूसरे की उपेक्षा,
खाली देखो, शिवसदन की, आपको थी अपेक्षा ॥१६॥

मोक्षार्थी थे, जिनभजक थे, साम्यवादी तथा थे,
ध्यानी भी थे, परहित-रती, सानुकम्पी सदा थे।
भव्यों को थे, शिवसदन का, मार्ग भी औ दिखाते,
सन्तों के तो, शिवगुरु यहाँ, जीवनाधार ही थे ॥१७॥

साथी को भी, अरु अहित को, देखते थे समान,
थोड़ा सा भी, तव हृदय में, स्थान पाया न मान।
दीक्षा दे के, कतिपय जनों, को बनाया सुयोगी,
औ पीते थे, वृष अमृत को, चाव से थे विरागी ॥१८॥

कामारी थे, शिवयुवति से, मेल भी चाहते थे,
नारी से तो, परम डरते, शील-नारीश भी थे।
ज्ञानी भी थे, सुतप तपते, देह से कृश्य भी थे,
मुक्तिश्री को, निशिदिन तभी, पास में देखते थे ॥१९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

माथा रूपी, शिवफल तजूँ, आपके पादकों में,
श्रद्धारूपी, स्मित कुसुम को, मोचता हूँ तथा मैं।
मुद्रा है जो, शिवचरण में, औ रहे नित्य मेरी,
प्यारी मुद्रा, मम हृदय में, जो रहे हृद्य तेरी ॥२०॥

छाई फैली, शिव-रवि छिपी, गाढ़ दोषा अमा की,
आई दौड़ी, घन दुख घटा, ले अमा फागुना की।
आचार्य श्री, अब इह नहीं, जो बड़े थे सुसौम्य,
जन्मे हैं वे, अमरपुरि में, है जहाँ स्थान रम्य ॥२१॥

पाया मैं तो, तव दरश ना, जो बड़ा हूँ अभागा,
ज्ञानी होऊँ, तव भजन को, किन्तु मैं तो सुगा गा।
मैं पोता हूँ, भव जलधि के, आप तो पोत 'दादा'
'विद्या' की जो, शिवगुरु अहो, दो मिटा कर्मबाधा ॥२२॥

॥ आचार्यश्रीगुरुवर्यप्रातःस्मरणीयश्रीशिवसागराय नमः॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज

के पावन-चरणों में सविनय श्रद्धांजलि

(मुक्त छन्द)

गुरो! दल दल में मैं था फँसा,
मोह-पाश से हुआ था कसा।
बन्ध छुड़ाया, दिया आधार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१॥

पाप पंक से पूर्ण लिप्त था,
मोह नींद में सुचिर सुप्त था।
तुमने जगाया किया उपचार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥२॥

आपने किया महान उपकार,
पहनाया मुझे रतन-त्रय हार।
हुए साकार मम सब विचार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार॥३॥

मैंने कुछ ना की तव सेवा,
पर तुमसे मिला मिष्ठ मेवा।
यह गुरुवर की गरिमा अपार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

निज-धाम मिला, विश्राम मिला,
सब मिला, उर समकित-पद्म खिला।
अरे! गुरुवर का वर उपकार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥५॥

अंधा था, बहिरा था, था मैं अज्ञ,
दिये नयन व करण, बनाया विज्ञ।
समझाया मुझको समयसार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥६॥

मोह-मल धुला, शिव-द्वार खुला,
पिलाया निजामृत घुला-घुला।
कितना था गुरुवर उर-उदार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥७॥

प्रवृत्ति का परिपाक संसार,
निवृत्ति नित्य सुख का भंडार।
कितना मौलिक प्रवचन तुम्हार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥८॥

रवि से बढ़कर है काम किया,
जन-गण को बोध प्रकाश दिया।
चिर ऋणी रहेगा यह संसार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

स्व-पर हित तुम लिखते ग्रन्थ,
आचार्य उवझाय थे निर्ग्रन्थ।
तुम सा मुझे बनाया अनगार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१०॥

इन्द्रिय-दमन कर कषाय-शमन,
करते निशदिन निज में ही रमण।
क्षमा था तव सुरम्य शृंगार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥११॥

बहु कष्ट सहे, समन्वयी रहे,
पक्षपात से नित दूर रहे।
चूँकि तुममें था साम्य संचार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१२॥

मुनि गावें तव-गुण-गण गाथा,
झुके तुम पाद में मम माथा।
चलते, चलाते समयानुसार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१३॥

तुम थे द्वादश विध तप तपते,
पल पल जिनप नाम जप जपते।
किया धर्म का प्रसार-प्रचार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दुर्लभ से मिली यह 'ज्ञान सुधा',
'विद्या' पी इसे, मत रो मुधा।
कहते यों गुरुवर यही 'सार
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१५॥

व्यक्तित्व की सत्ता मिटा दी,
उसे महासत्ता में मिला दी!
क्यों न हो प्रभु से साक्षात्कार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१६॥

करके दिखा दी सल्लेखना,
शब्दों में न हो उल्लेखना।
सुर, नर कर रहे जय जयकार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१७॥

आधि नहीं थी, थी नहीं व्याधि,
जब आपने ली परम-समाधि।
अब तुम्हें क्यों न वरे शिवनार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१८॥

मेरी भी हो इस विध समाधि,
रोष-तोष नशे, दोष उपाधि।
मम आधार, सहज समयसार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जय हो ज्ञानसागर ऋषिराज!
तुमने मुझे सफल बनाया आज।
और इक बार करो उपकार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥२०॥

॥ आचार्यश्रीगुरुवर्यप्रातःस्मरणीयश्रीज्ञानसागराय नमः॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

श्रमण शतक

(वसन्ततिलका छन्द)

योगी करें स्तवन भावभरे स्वरों से,
जो हैं सुसंस्तुत नरों, असुरों, सुरों से।
वे वर्धमान गतमान मुझे बचावें,
काटें कुकर्म मम मोक्ष विभो! दिलावें ॥१॥

जो चन्द्रगुप्त मुनि के गुरु हैं, बली हैं,
वे भद्रबाहु समधी श्रुत-केवली हैं।
वंदूँ उन्हें द्रुत भवोदधि पार जाऊँ,
संसार में फिर कदापि न लौट आऊँ ॥२॥

हे 'कुन्दकुन्द' मुनि! भव्य-सरोजबन्धु!
मैं बार-बार तव पाद-सरोज वंदूँ।
सम्यक्त्व के सदन हो, समता सुधाम,
है धर्म-चक्र शुभ धार लिया ललाम ॥३॥

जो 'ज्ञानसागर' सुधी गुरु हैं हितैषी,
शुद्धात्म में निरत नित्य हितोपदेशी।
वे पाप- ग्रीष्म ऋतु में जल हैं सयाने,
पूजूँ उन्हें सतत केवल-ज्ञान पाने ॥४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

हे शारदे! अब कृपा कर दे जरा तो,
तेरा उपासक खरा, भव से डरा जो!
माता! विलम्ब करना मत, मैं पुजारी,
आशीष दो, बन सकूँ बस निर्विकारी ॥५॥

रे! साधु का निहित है हित साधुता में,
धारूँ उसे तज असार असाधुता मैं।
भाई अतः श्रमण के हित मैं लिखूँगा,
शुद्धात्म को सहज से फलतः लखूँगा ॥६॥

विद्वान मान मन में मुनि जो न धारें,
वे 'वीर' के वचन से मन को सुधारें।
जाके रहे विपिन में मन मोद पाते,
हैं स्नान आत्म-सर में करते सुहाते ॥७॥

जो कर्म को यति यदा करता नहीं है,
आत्मा उसे वह तदा, दिखता सही है।
ऐसा सदैव कहती जिनदेव वाणी,
होते सुखी सुन जिसे सब भव्य प्राणी ॥८॥

तू छोड़ के विषमयी उस वासना को,
निश्चिन्त हो, कर निजीय उपासना को।
निर्भ्रान्त ही शिवरमा तुझको वरेगी,
योगी कहे परम प्रेम सदा करेगी ॥९॥

हैं पुण्य-पाप पर, पुद्गल रूप जानूँ,
सम्यक्त्व भाव इनसे किस भाँति मानूँ।
ना नीर के मथन से नवनीत पाना,
अक्षुण्ण कार्य करके थक मात्र जाना ॥१०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नाना प्रकार तप से तन को तपाया,
है छोड़ वस्त्र जिनने अघ को हटाया।
पाया निजानुभव को निज को दिपाया,
मैंने उन्हें विनय से उर बीच पाया ॥११॥

कम्पायमान मन को जिसने न रोका,
आत्मा उसे न दिखता जड़ से अनोखा।
आकाश में अरुण शोभित हो रहा है,
क्या अन्ध को नयनगोचर हो रहा है? ॥१२॥
जो जीतता सब क्षुधादि परीषहों को,
संहार रागमय-भाव स्ववैरियों को।
है वीतराग बनता वह शीघ्रता से,
शुद्धात्म को निरखता बचता व्यथा से ॥१३॥

है वंद्य दिव्य निज आतम द्रव्य न्यारा,
जो शुद्ध निश्चय नयाश्रित मात्र प्यारा।
योगी गृही सम उसे न कभी निहारें,
जो त्याग के पुनि परिग्रह-भार धारें ॥१४॥

सद्बोध रूप सर शोभित है विशाल,
ना हैं जहाँ वह विकल्प तरंग-जाल।
शोभे तथा परम धर्म पयोज प्यारे,
तू छोड़ के मनमराल! उसे न जा रे! ॥१५॥

जीतीं जिनेश जिसने निज इन्द्रियाँ हैं,
माना गया यति वही, जग में यहाँ है।
श्रद्धा-समेत उसको सिर मैं नमाता,
शुद्धात्म को निरख, शीघ्र बनूँ प्रमाता ॥१६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सद्बोध से परम शोभित जो यहाँ है,
पीयूष पी स्वपद में रमता रहा है।
क्या संयमी विषय-पान कदापि चाहे?
जो जीव को विष समान सदैव दाहे ॥१७॥

विज्ञान से स्वपद को जिसने पिछाना,
त्यागा सभी तरह से पर को सुजाना।
वो दुःखरूप उस आस्त्रव को नशाता,
स्वामी! सही सुखद संवर तत्त्व पाता ॥१८॥

मायादि शल्य-त्रय को मुनि नित्य त्यागें,
ज्ञानादि रत्नत्रय धार सदैव जागें।
वे शुद्ध तत्त्व फलतः पल में लखेंगे,
संसार में परम सार उसे गहेंगे ॥१९॥

आदेय-हेय जिनने सहसा पिछाने,
लाये स्वचिन्तनतया मन को ठिकाने।
ज्ञानी वशी परम धीर मुमुक्षु ऐसे,
स्वामी! रखें कुपथ में निजपाद कैसे?॥२०॥

संसार से बहुत यद्यपि जो डरा है,
जाना जिनागम सभी जिसने खरा है।
आत्मा उसे न दिखता यदि है प्रमादी,
ऐसा सदैव कहते गुरु सत्यवादी ॥२१॥

है ज्ञान जो सघन पावन पूर्ण प्यारा,
सद्ज्ञान रूप जल की झरती सुधारा।
शोभामयी अतुलनीय सुखैक डेरा,
नाचे उसे निरख मानस-मोर मेरा ॥२२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

होते घनिष्ठ जिसके दृग-बोध साथी,
होता वही चरित आतम का सुखार्थी।
देता निजीय सुख, तीरथ भी कहाता,
तू धार मित्र! उसको दुख क्यों उठाता? ॥२३॥

पीता निजानुभव पावन पेय प्याला,
डाले गले शिवरमा उसके सुमाला।
जो लोक में अनुपमा शुचि-धारिणी है,
ऐसा जिनेश कहते सुख-कारिणी है ॥२४॥

रागादि भाव जिसमें न, वही समाधि,
पाके उसे मुदित हो मुनि अप्रमादी।
होती नदी अमित सागर पा यथा है,
किं वा दरिद्र खुश हो निधि पा अथाह ॥२५॥

है देह-नेह भव-कारण तो उसी से,
मोक्षेच्छु मैं, बहुत दूर रहूँ खुशी से।
मैं हो विलीन निज में, निज को भजूँगा,
स्वामी! अनन्त सुख पा, भव को तजूँगा ॥२६॥

जो भी निजानुभव को जब प्राप्त होते,
वे रागद्वेष लव को न कदापि ढोते।
तो कौन सा फिर पदार्थ रहाऽवशेष?
प्राप्तव्य जो कि उनको न रहा विशेष ॥२७॥

रागादि भाव पर हैं पर से न नाता,
ज्ञानी-मुनीश रखता पर में न जाता।
धिक्कार मूढ़ पर को करता, कराता,
ना तत्त्व-बोध रखता, अति दुःख पाता ॥२८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सम्बन्ध होत विधि से विधि का सदा है,
बोधैकधाम 'जिन' ने जग को कहा है।
ऐसा रहस्य फिर भी मुनि ने गहा है,
जो आत्मभाव करता सहसा रहा है ॥२९॥

आत्मानुभूति वर चेतन-मूर्ति प्यारी,
साक्षात् यदा उपजती शिवसौख्यकारी।
माँगे तथापि मुनि क्या जग-सम्पदा को?
देती सदा जनम जो बहु आपदा को ॥३०॥

संपूर्ण भोग मिलने पर भी कदापि,
भोगी नहीं मुनि बने, बनते न पापी।
पीते तभी सतत हैं समता सुधा को,
गाली मिले, न फिर भी करते क्रुधा को ॥३१॥

मिथ्यात्व को हृदय में मत स्थान देना,
है दुष्ट व्याल वह, क्यों दुख मोल लेना।
छोड़ो उसे निकट भी उसके न जाओ,
तो शीघ्र ही अतुल संपति-धाम पाओ ॥३२॥

जैसे कहे जलज जो जल से निराला,
वैसे बना रह सदा जड़ से खुशाला।
क्यों तू प्रमत्त बनता बन भोग त्यागी,
रागी नहीं बन कभी बन वीतरागी ॥३३॥

हूँ देह से पृथक चेतन शक्ति वाला,
स्वामी! सदैव मुझसे तन भी निराला।
यों जान, मान तन का मद छोड़ता हूँ,
मैं मात्र मोक्ष-पथ से मन जोड़ता हूँ ॥३४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

हो काम नष्ट अघ भी मिटता यदा है,
योगी विहार करता निज में तदा है।
आकाश में विहग क्या फिर भी उड़ेगा?
जो जाल में फँस गया फिर क्या करेगा?॥३५॥

सौभाग्य से श्रमण जो कि बना हुआ है,
सच्चा जिसे प्रशमभाव मिला हुआ है।
छोड़े नहीं वह कभी उस निर्जरा को,
जो नाशती जनम-मृत्यु तथा जरा को॥३६॥

संसार में धन न सार असार सारा,
स्थायी नहीं, न उनसे सुख हो अपारा।
है सार तो समय-सार अपार प्यारा,
हो प्राप्त शीघ्र जिससे वह मुक्तिदारा॥३७॥

निस्संग हो विचरते गिरि-गह्वरों में,
वे साधु ज्यों पवन है वन कन्दरों में।
कामाग्नि को स्वरस पी झट से बुझा के,
विश्राम पूर्ण करते निज-धाम जाके॥३८॥

शोभे सरोज-दल से सर ठीक जैसा,
सद्ध्यान रूप जल से मुनि-मीन वैसा।
हो कंज में मृदुपना न असंयमी में,
'ना शब्द व्योम गुण हैं'-कहते यमी हैं॥३९॥

ये आर्त्तरौद्र मुझको रुचते नहीं हैं,
संसार के प्रमुख कारण पाप वे हैं।
श्री रामचन्द्र फिर भी मृग-भ्रान्ति भूले?
जो देख कांचन-मृगी इस भाँति फूले॥४०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

योगी निजानुभव से पर को भुलाता,
है वीतरागपन को फलरूप पाता।
वो क्या कभी मरण से मुनि हो डरेगा?
शुद्धोपयोग धन को फिर क्या तजेगा ॥४१॥

जो भानु है, दृग-सरोज विकासता है,
योगी सुदूर रहता उससे यदा है।
वो तो तदा नियम से पर भावनायें,
हा! हा! करे, सहत है फिर यातनायें ॥४२॥

ये पंच पाप इनको बस शीघ्र छोड़ो,
धारो महाव्रत सभी मन को मरोड़ो।
औ! राग का तुम समादर ना करो रे!
देवाधिदेव 'जिन' को उर में धरो रे! ॥४३॥

रे! 'वीर' ने जड़मयी तज के क्षमा को,
है धार ली तदुपरान्त महा क्षमा को।
जो चाहते जगत में बनना सुखी हैं,
धारें इसे, परम मुक्ति-वधू सखी है ॥४४॥

आस्था घनिष्ठ निज में जिनकी रही है,
विज्ञान से चपलता मन की रुकी है।
होता चरित्र उनका वर मोक्ष-दाता,
ऐसा रहस्य यह छन्द हमें बताता ॥४५॥

आत्मा जिसे न रुचता वह तो मुधा है,
मिथ्यात्व से रम रहा पर में वृथा है।
ज्ञानी निजीय घर में रहते सदा ये,
वन्दूँ उन्हें, द्रुत मिले निज संपदायें ॥४६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

कैसे रहे अनल दाहकता बिना वो,
तो अग्नि से पृथक दाहकता कहाँ हो?
आकाश के बिन कहीं रह तो सकेगा,
पै ज्ञान आतम बिना न कहीं रहेगा ॥४७॥

जो मात्र शुद्धनय से न हि शोभता है,
पै वीतरागमय भाव सुधारता है।
लक्ष्मी उसे वरण है करती खुशी से,
सागार को निरखती तक ना इसी से ॥४८॥

हैं पूर्व में मुनि सभी बनते अमानी,
पश्चात् जिनेश बनते, यह 'वीर' वाणी।
तू भी अभी इसलिए तज मान को रे,
शुद्धात्म को निरख, ले सुख की हिलोरें ॥४९॥

संसार सागर किनार निहारना है,
तो मार मार, दृग को द्रुत धारना है।
औ! जातरूप 'जिन' को नित पूजना है,
भाई! तुझे परम आतम जानना है ॥५०॥

सल्लीन हों स्वपद में सब सन्त साधु,
शुद्धात्म के सुरस के बन जाये स्वादु।
वे अन्त में सुख अनन्त नितान्त पावें,
सानन्द जीवन शिवालय में बितावें ॥५१॥

ये रोष-रागमय भाव विकार सारे,
मेरे स्वभाव नहिं हैं बुध यों विचारें।
ये पाप पुण्य इनमें फिर मौन धारें,
औ देह स्नेह तज के निज को निहारें ॥५२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

संसार के जलधि से कब तैरना हो,
ऐसी त्वदीय यदि हार्दिक भावना हो।
आस्वाद ले जिनप-पाद पयोज का तू,
ना नाम ले अब कभी उस 'काम' का तू ॥५३॥

संसार-बीच बहिरातम वो कहाता,
झूठा पदार्थ गहता, भव को बढ़ाता।
बेकार मान करता निज को भुलाता,
लक्ष्मी उसे न वरती, अति कष्ट पाता ॥५४॥

जो पाप से रहित चेतन मूर्ति प्यारी,
हो प्राप्त शीघ्र उनको भव-दुःखहारी।
जो भी महाश्रमण हैं निज गीत गाते,
सच्चे क्षमादि दश धर्म स्वचित्त लाते ॥५५॥

सम्यक्त्व-लाभ वह है किस काम आता,
है कर्म का उदय ही यदि पाप लाता।
तो हाय! मुक्ति-ललना किसको वरेगी,
वो सम्पदा अतुलनीय किसे मिलेगी ॥५६॥

लेवें निजीय निधि का मुनि वे सहारा,
संसार मूल जड़ वैभव को बिसारा।
ना चाहते विबुध वे यश सम्पदा को,
हाँ, चाहते जड़ उसे सहते व्यथा को ॥५७॥

संसार में सुख नहीं, दुख का न पार,
ले आत्म में रुचि भला-सुख हो अपार।
सिद्धान्त का मनन या कर चाव से तू,
क्यों लोक में भटकता पर भाव से तू? ॥५८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जो भी रहे समय में रत, मौन धारे,
पाते अलौकिक सही सुख शीघ्र सारे।
वो विज्ञ ना समय का, वह कष्ट पाता,
पीड़ार्त हो, समय है जब बीत जाता ॥५९॥

आत्मा अनन्त-गुण-धाम सदैव जानो,
सम्यक्त्व प्राप्त करके निज को पिछानो।
जाओ वहाँ इधर या तुम शीघ्र आओ,
आदेश ईदृश नहीं पर को सुनाओ ॥६०॥

भोगे हुए विषय को मन में न लाता,
औ प्राप्त को पकड़ना न जिसे सुहाता।
कांक्षा नहीं उस अनागत की करेगा,
वो सत्य पाकर कभी अहि से डरेगा?॥६१॥

हे वीर देव! तुमको नमते मुमुक्षु,
पीते तभी स्वरस को सब सन्त भिक्षु।
क्यों बीच में मनुज तेज कचौड़ि खाते?
पश्चात् अवश्य फलतः हलुवा उड़ाते॥६२॥

चारित्र का नित समादर जो करेंगे,
वे ही जिनेन्द्र-पद की स्तुति को करेंगे!
ऐसा सदैव कहती प्रभु भारती है,
नौका-समान भव पार उतारती है ॥६३॥

आहार जो न करते समयानुसार,
औ धारते न रतनत्रय-रूप हार।
रागाग्नि से सतत वे जलते रहेंगे,
संसार वारिधि महा फिर क्यों तिरेंगे ॥६४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

देखो सखे! अमर लोग सुखी न सारे,
वे भी दुखी सतत, खेचर जो विचारे।
दुःखार्त्त हि दिख रहे नर मेदिनी में,
शुद्धात्म में रम अतः, मत रागिनी में ॥६५॥

कामाग्नि से परम तप्त हुआ सदा से,
तू आत्म को कर सुतृप्त स्व की सुधा से।
कोई प्रयोजन नहीं जड़ सम्पदा से,
पा बोध हो नर! सुखी अति शीघ्रता से ॥६६॥

सम्बन्ध द्रव्य श्रुत से नहिं मात्र रक्खो,
रक्खो स्वभाव श्रुत से, निज स्वाद चक्खो।
है मेदिनी तप गई रवि ताप से जो,
क्यों शांत हो जल बिना जल नाम से वो ॥६७॥

''पर्याय वो जनमती मिटती रही है,
त्रैकालिकी यह पदार्थ, यही सही है।''
श्री वीर देव जिन की यह मान्यता है,
पूजूँ उसे विनय से यह साधुता है ॥६८॥

संमोह राग मद है यदि भासमान,
या विद्यमान मुनि के मन में ऽभिमान।
आनन्द हो न उस जीवन में कदापि,
हा! हा! वही नरक कुण्ड बना ऽतिपापी ॥६९॥

श्रद्धाभिभूत जिसने मुनि लिंग धारा,
कंदर्प को सहज से फिर मार डारा।
अत्यन्त शान्त निज को उसने निहारा,
औ अन्त में बल ज्वलन्त अनन्त धारा ॥७०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

''रे! पाप ही अहित है, रिपु है तुम्हारा,
काला कराल अहि है, दुख दे अपारा।
हो दूर शीघ्र उससे, तब शान्ति धारा,''
ऐसा कहें जिनप जो जग का सहारा ॥७१॥

ले रम्य दृश्य ऋतुराज वसन्त आता,
ज्यों देख कोकिल उसे मन मोद पाता।
हे वीर! त्यों तव सुशिष्य खुशी मनाता,
शुद्धात्म को निरख औ दुख भूल जाता॥७२॥

होता कुधी, वह सुखी दिवि में नहीं है,
तू आत्म में रह, अतः सुख तो वही है।
क्या नाक से, नरक से? इक सार माया,
सम्यक्त्व के बिन सदा! दुख ही उठाया॥७३॥

ज्योत्स्ना लिए तपन यद्यपि है प्रतापी,
छा जाय बादल, तिरोहित हो तथापि।
आत्मा अनन्त द्युति लेकर जी रहा है,
हो कर्म से अवश कुन्दित हो रहा है ॥७४॥

कैसे मिले? नहिं मिले सुख माँगने से,
कैसे उगे अरुण पश्चिम की दिशा से?
तो भी सुदूर वह मूढ़ निजी दशा से,
होता अशान्त अति पीड़ित हो तृषा से ॥७५॥

लिप्सा कभी विषय की मन में न लाओ,
चारित्र धारण करो, पर में न जाओ।
चिन्ता कदापि न अनागत की करोगे,
विश्राम स्वीय घर में चिरकाल लोगे॥७६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

संसार सागर असार अपार खारा,
है दुःख ही, सुख जहाँ न मिले लगारा।
तो आत्म में रत रहो, सुख चाहते जो,
है सौख्य तो सहज में, नहिं जानते हो?॥७७॥

''कैवल्य-साधन न केवल नग्न-भेष,''
त्रैलोक्य वन्द्य इस भाँति कहें जिनेश।
इत्थम् न हो, पशु दिगम्बर क्या न होते ?
होते सुखी ? दुखित क्यों दिन रात रोते ?॥७८॥

''संसार की सतत वृद्धि विभाव से है,
तो मोक्ष सम्भव स्वतन्त्र स्वभाव से है।
हो जा अतः अभय, हो विभु में विलीन,''
हैं केवली-वचन ये—''बन जा प्रवीण''॥७९॥

सम्यक्त्व नीलम गया जिसमें जड़ाया,
चारित्र का मुकुट ना सिर पै चढ़ाया।
तूने तभी परम आतम को न पाया,
पाया अनन्त दुख ही, सुख को न पाया॥८०॥

जो काय से वचन से मन से सुचारे,
पा बोध, राग मल धोकर शीघ्र डारे।
ध्याता निरन्तर निरंजन जैन को है,
पाता वही नियम से सुख चैन को है॥८१॥

दुस्संग से प्रथम जीवन शीघ्र मोड़ो,
तो संग को समझ पाप तथैव छोड़ो।
विश्वास भी कुपथ में न कदापि लाओ,
शुद्धात्म को विनय से तुम शीघ्र पाओ॥८२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पत्ता पका गिर गया तरु से यथा है,
योगी निरीह तन से रहता तथा है।
औ ब्रह्म को हृदय में उसने बिठाया,
तू क्यों उसे विनय से स्मृति में न लाया ?॥८३॥

वाणी, शरीर, मन को जिसने सुधारा,
सानन्द सेवन करे समता-सुधारा।
धर्माभिभूत मुनि है वह भव्य जीव,
शुद्धात्म में निरत है रहता सदीव॥८४॥

जो साधु जीत इन इन्द्रिय-हाथियों को,
आत्मार्थ जा, वन बसें तज ग्रन्थियों को।
पूजूँ उन्हें सतत वे मुझको जिलावें,
पानी सदा दृगमयी कृषि को पिलावें॥८५॥

मैं उत्तमाङ्ग उसके पद में नमाता,
जो है क्षमा-रमणि से रमता-रमाता।
देती क्षमा अमित उत्तम सम्पदा को,
भाई! अतः तज सभी जड़-संपदा को॥८६॥

ना वन्द्य है, न नय निश्चय मोक्ष-दाता,
ना है शुभाशुभ, नहीं दुख को मिटाता।
मैं तो नमूँ इसलिए मम ब्रह्म को ही,
सद्यः टले दुख मिले सुख और बोधि॥८७॥

सत् चेतना हृदय में जब देख पाता,
आत्मा मदीय भगवान समान भाता।
तू भी उसे भज जरा, तज चाह-दाह,
क्यों व्यर्थ ही नित व्यथा सहता अथाह॥८८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

''गम्भीर-धीर यति जो मद ना धरेंगे,
औ भाव-पूर्ण स्तुति भी निज की करेंगे।
वे शीघ्र मुक्ति ललना वर के रहेंगे,''
ऐसा जिनेश कहते—'सुख को गहेंगे'॥८९॥

आत्मावलोकन कदापि न नेत्र से हो,
पूरा भरा परम पावन बोधि से जो।
आदर्श-रूप अरहन्त हमें बताते,
कोई कभी दृग बिना सुख को न पाते॥९०॥

जो 'वीर' के चरण में नमता रहा है,
चारित्र का वहन भी करता रहा है।
औ गोत्र का, दृग बिना, मद ढो रहा है,
विज्ञान को न गहता, जड़ सो रहा है ॥९१॥

धिक्कार! मोक्ष-पथ से च्युत हो रहा है,
तू अंग-संग ममता रखता अहा है!।
भाई! अतः सह रहा नित दुःख को ही,
ले ले विराम अघ से, तज मोह मोही ॥९२॥

जो सन्त हैं समय-सार सरोज का वे,
आस्वाद ले भ्रमर-से पर में न जावें।
सम्यक्त्व हो न पर से, निज आत्म से ही,
भाई! सुधा-रस झरे शशि-बिम्ब से ही॥ ९३॥

आया हुआ उदय में यह पुण्य पिण्ड,
औ पाप, भिन्न मुझको जड़ का करण्ड।
ब्रह्मा न किन्तु पर है, वर-बोध भानु,
मैं सर्व-गर्व तज के इस भाँति जानूँ ॥९४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

साधू सुधार समता, ममता निवार,
जो है सदैव शिव में करता विहार।
तो अन्य साधु तक भी उसके पदों में,
होते सुलीन अलि-से, फिर क्या पदों में?॥९५॥

प्रायः सभी कुतप से सुर भी हुए हैं,
लाखों दफा असुर हो, मर भी चुके हैं।
देदीप्यमान नहिं 'केवलज्ञान' पाया,
हे वीर देव! हमने दुख ही उठाया॥९६॥

सानन्द यद्यपि सदा जिन नाम लेते,
योगी तथापि न निजातम देख लेते।
तो वो उन्हें शिवरमा मिलती नहीं है,
तेरा जिनेश! मत ईदृश क्या नहीं है?॥९७॥

अत्यन्त मोह-तम में कुछ ना दिखेगा,
तू आत्म में रह, प्रकाश वहाँ मिलेगा।
स्वादिष्ट मोक्ष-फल वो फलतः फलेगा,
उद्दीप्त दीपक सदैव अहो! जलेगा ॥९८॥

तू चाहता विषय में मन ना भुलाना,
तो सात तत्त्व-अनुचिन्तन में लगा ना!
ऐसा न हो, कुपथ से सुख क्यों मिलेगा ?
आत्मानुभूति झरना फिर क्यों झरेगा?॥ ९९॥

हूँ बाल, मन्द-मति हूँ लघु हूँ यमी हूँ,
मैं राग की कर रहा क्रम से कमी हूँ।
हे चेतने! सुखद-शान्ति-सुधा पिला दे,
माता! मुझे कर कृपा मुझमें मिला दे॥ १००॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चाहूँ कभी न दिवि को अयि वीर स्वामी!
पीऊँ सुधा रस निजीय बनूँ न कामी।
पा 'ज्ञानसागर' सुमन्थन से सुविद्या,
'विद्यादिसागर' बनूँ, तज दूँ अविद्या ॥१०१॥

मंगल कामना

यही प्रार्थना वीर से, अनुनय से कर जोर।
हरी भरी दिखती रहे, धरती चारों ओर ॥१॥

विषय कषाय तजो भजो, जरा निर्जरा धार।
ध्याओ निज को तो मिले, अजरामर पद सार ॥२॥

सागर वो कचरा तजे, समझ उसे निस्सार।
गलती करता क्यों भला, तू अघ को उर धार ॥३॥

रवि सम पर उपकार में, रहो विलीन सदैव।
विश्व शान्ति वरना नहीं, यों कहते जिनदेव ॥४॥

रग-रग से करुणा झरे, दुखीजनों को देख।
चिर रिपु लख ना नयन में, चिता रुधिर की रेख ॥५॥

तन-मन-धन से तुम सभी, पर का दुःख निवार।
शम-दम-यम युत हो सदा, निज में करो विहार ॥६॥

तरणि ज्ञानसागर गुरो! तारो मुझे ऋषीश।
करुणाकर! करुणा करो! कर से दो आशीष ॥७॥

[१]इक त्रि शून्य द्वय वर्ष की, भाद्रपदी सित तीज।
लिखा गया अजमेर में, भुक्ति-मुक्ति का बीज ॥८॥

नमूँ ज्ञानसागर गुरु, मुझ में कुछ नहिं ज्ञान।
त्रुटियाँ होवें यदि यहाँ, शोध पढ़ें धीमान ॥९॥

---

१. समय विक्रम संवत् २०३१, भाद्रपद शुक्ला तृतीया, स्थान-अजमेर नगर (राजस्थान)

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भावनाशतक

(वसन्ततिलका छन्द)

शोभें प्रभो परम पावन पा पदों को,
योगी करें नमन ये जिनके पदों को।
सौभाग्य मान उनको उर में बिठा लूँ,
साफल्यपूर्ण निज-जीवन को बना लूँ ॥१॥

ध्यानाग्नि से मदन को तुमने जलाया,
पीयूष स्वानुभव का निज को पिलाया।
धारा सुरत्नत्रयहार, अतः कृपालो,
पूजूँ तुम्हें मम गुरो! मद मेट डालो ॥२॥

अन्धा विमोहतम में भटका फिरा हूँ,
कैसे प्रकाश बिन संवर भाव पाऊँ।
हे शारदे! विनय से द्वय हाथ जोड़ूँ,
आलोक दे विषय को विष मान छोड़ूँ॥ ३॥

सम्मान मैं समय का करता कराता,
हूँ 'भावनाशतक' काव्य अहो बनाता।
मेरा प्रयोजन प्रभो कुछ और ना है,
जीतूँ विभाव भव को बस भावना है ॥४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आदर्श सादृश सुदर्शन शुद्धि प्यारी,
पाके जिसे जिन बने स्व-परोपकारी।
ऐसा जिनेश मत है मत भूल रे! तू,
साक्षात् भवाम्बुनिधि का यह भव्य सेतु ॥५॥

होता विनष्ट जब दर्शनमोह स्वामी,
जाती तदा वह अनन्त कषाय नामी।
पाते इसे जन तभी जिन! जैन जो हैं,
सद्भारती कह रही जनमीत जो हैं ॥६॥

जो अंग-अंग करुणारस से भरा है,
शोभायमान दृग से वह हो रहा है।
औचित्य है समझ में यह बात आती,
अत्युज्ज्वला शशिकला निशि में सुहाती ॥७॥

हो प्राप्त, स्वर्ग तक पुण्यविधान से भी,
होता न प्राप्त दृग शस्त निदान से भी।
सत् साधना सहज साध्य सदा दिलाती,
लक्ष्मी अहो मृदुल हाथ तभी मिलाती ॥८॥

दुर्जेय मोहरिपु को जिनने दबाया,
शुद्धोपयोग मणिहार गले सजाया।
वे साधु बोध बिन भी दृग शुद्धि पाते,
जो बाह्य में निरत हैं दुख ही उठाते ॥९॥

आलोक दे सुजन को रवि से जगाती,
है भव्य कंज दल को सहसा खिलाती।
है पापरूप तम को क्षण में मिटाती,
ऐसी सुदर्शन विशुद्धि किसे न भाती ॥१०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ना पाप को, विनय को शिर मैं नमाता,
हे वीर! क्योंकि मुझको निज सौख्य भाता।
जो भी गया तपन तापतया-सताया,
क्या चाहता अनल को, तज नीर छाया ॥११॥

सेना विहीन नृप ज्यों जय को न पाता,
त्यों हीन जो विनय से शिव को न पाता।
सत् साधना यदि करे दुख भी टलेगा,
संसार में सहज से सुख भी मिलेगा ॥१२॥

निर्भीक हो विनय आयुध को सुधारा,
हे वीर! मान रिपु को पुनि शीघ्र मारा।
पाया स्वकीय निधि को जिसने यदा है,
क्या माँगता वह कभी जड़ संपदा है ॥१३॥

वे व्यर्थ का नहिं घमण्ड कभी दिखाते,
सन्मार्ग को विनय से विनयी दिखाते।
पापी कुधी तक तभी भवतीर पाते,
विद्वान भी हृदय में जिनको बिठाते ॥१४॥

संसार में विनय के बिन तू चलेगा,
आनन्द भी अमित औ मित क्यों मिलेगा।
योगी सुधी तक सदा इसका सहारा,
लेते अतः नमन हो इसको हमारा ॥१५॥

विद्वेष जो विनय से करते कराते,
निर्भ्रान्त वे नहिं भवोदधि तैर पाते।
जाना उन्हें भव-भवान्तर क्यों न होगा,
ना मोक्ष का विभव संभव भव्य होगा ॥१६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

कामाग्नि से जल रहा त्रयलोक सारा,
देखे जहाँ दुख भरा कुछ ना सहारा।
ऐसे जिनेश कहते, जग के विधाता,
जो काम मान मद त्याग बने प्रमाता ॥१७॥

पूजा गया मुनिगणों यति योगियों से,
त्यों शील, नीलमणि ज्यों जगभोगियों से।
सत् शील में सतत लीन अतः रहूँ मैं,
लो! मोक्ष को निकट ही फलतः लखूँ मैं॥१८॥

गंगाम्बु को न हिम को शशि को न चाहूँ,
चाहूँ न चन्दन कभी मन में न लाऊँ।
जो शीलझील मन की गरमी मिटाती,
डूबूँ वहाँ सहज शीतलता सुहाती ॥१९॥

मैं भूत भावि सब साम्प्रत पाप छोड़ूँ,
चारित्र संग झट चंचल चित्त जोड़ूँ।
सौभाग्य मान जिसको मुनि साधु त्यागी,
हैं पूजते नमन भी करते विरागी ॥२०॥

जैसे सती जगत में गजचाल हो तो,
शोभे उषा पवन मन्द सुगन्ध हो तो।
संसार शोभित रहे गति चार होवें,
सर्वज्ञ सिद्ध सब वे गति चार खोवें।
वैसा सुशीलव्रत संयम योग से रे,
होते सुशोभित सुधी, न हि भोग से रे॥
सिद्धान्तपारग सभी गुरु यों बताते,
सद्ध्यान में सतत जीवन हैं बिताते॥२१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

निर्भीक मैं बढ़ रहा शिव ओर स्वामी,
आरूढ़ शीलरथ पै अतिशीघ्रगामी।
लो! काल व्याल-विकराल-कुचाल वाला,
है भीति से पड़ गया वह पूर्ण काला॥२२॥

होता विनिर्विष रसायन से धतूरा,
है अग्नि से पिघलता झट मोम पूरा।
ज्यों काम देख शिव को दश प्राण खोता,
विज्ञान को निरख त्यों मद नष्ट होता ॥२३॥

संयोग पा मदन मञ्जुल कान्त का वे,
जैसा नितान्त ललनाजन मोद पावे।
किंवा सुखी कुमुद वारिधि चन्द्र से हो,
वैसा मदीय मन मोदित ज्ञान से हो ॥२४॥

ज्ञानोपयोग बन तू मम मित्र प्यारा,
ज्यों अग्नि का पवन मित्र बना उदारा।
पीड़ा मिटे, सुख मिले, भव-जेल छूटे,
धारा अपूर्व सुख की न कदापि टूटे ॥२५॥

स्वामी! भले ही शिर पै शशि भा रहा हो,
विज्ञान से विकल शंकर ही रहा हो।
श्रीकृष्ण पाकर इसे कुछ ही दिनों में,
होंगे सुपूज्य यतियों मुनि सज्जनों में ॥२६॥

ज्ञानोपयोग वर संवर साधता है,
चाञ्चल्यचित्त झट से यह रोकता है।
भाई निजानुभवियों यति नायकों ने,
ऐसा कहा सुन! जिनेन्द्र उपासकों ने ॥२७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जाज्वल्यमान न कदापि चलायमान,
हो ज्ञानदीप कर में यदि विद्यमान।
रूपी दिखे, पर पदार्थ सभी अरूपी,
हैं स्पष्टरूप दिखते जिन चित्स्वरूपी ॥२८॥

माला सुमेरु मणि से जिस भाँति भाती,
वाणी गणेश मुख से जिन की सुहाती।
संवेग से मनुज भी उस भाँति भाता,
जो है सदैव जिनका गुणगीत गाता ॥२९॥

बोलें विहंगम, उषा मन को लुभाती,
शोभावती वह निशा शशि से दिखाती।
हो पूर्ण शान्तरस से कविता कहाती,
शुद्धात्म में मुनि रहें मुनिता सुहाती ॥३०॥

ज्यों मारता सहज अर्जुन कौरवों को,
संवेग त्यों दुरित कर्म अरातियों को।
दावा यथा सघन कानन को जलाता,
संसाररूप वन को यह भी मिटाता॥
ज्यों नाग नाम सुन मेंढक भाग जाता,
त्यों ही कषाय इसके नहिं पास आता।
ऐसी विशेष महिमा इसकी सुनी रे!
संवेगरूप धन पा बन जा धनी रे! ॥३१॥

संवेग है परम सौख्यमयी उषा का,
धाता, परन्तु शशि है दुखदा निशा का।
निर्दोष है यह सदा शशि दोष धाम,
संवेग श्रेष्ठ शशि से लसता ललाम ॥३२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सम्यक्त्वज्योति बल से रवि को हराता,
है तेज वाडव भवाम्बुधि को सुखाता।
चाञ्चल्यचित्त मृग को यह व्याघ्र खाता,
संवेग आत्मिक महासुख का विधाता॥३३॥

संसार से स्वतन से जड़ भोग से वे,
होते निरीह बुध हैं इनको न सेवें।
पीड़ा अतीव इनसे दिन रैन होती,
शीघ्रातिशीघ्र बुझती निजबोध ज्योति॥३४॥

कामाग्नि से जल रहा यदि पूर्ण रागी,
धाता नहीं वह न शंकर है न त्यागी।
तो विश्व का अमित दुःख त्रिशूलधारी,
कैसे मिटाकर, बने स्वपरोपकारी ? ॥३५॥

ले क्षीर स्वाद रसना अति मोद पाती,
पा फूल फूल-सम नासिक फूल जाती।
संतुष्ट ओ तृषित शीतल नीर से हो,
मेरा सुतृप्त मन तो अघ त्याग से हो ॥३६॥

संतुष्ट बाल जननीस्तनपान से हो,
फूले लता ललित लो! जलस्नान से हो।
हो तुष्ट आम्रकलिका लख कोकिला वे,
मेरा कषाय तज के मन मोद पावे॥३७॥

शास्त्रानुसार यदि त्याग नहीं बना है,
लो! दुःख ही न मिटता उससे अहा है।
जो अन्नसार रस से अति ही भरा है,
भाई कभी न मिटती उससे क्षुधा है॥३८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

क्या साधु से सुबुध से ऋषि से यमी से,
भाई! प्रशंसित रही समता सभी से।
सौभाग्य है मम घड़ी शुभ आ गई है,
सर्वांग में सुसमता सुसमा गई है॥३९॥

मैं वीतराग बन के मन रोकता हूँ,
तो सत्य तथ्य निजरूप विलोकता हूँ।
आलोक हो अरुण ओ जब जन्म लेता,
अज्ञात को नयन भी झट देख लेता॥४०॥

शुद्धात्म में स्थिति सही तप ही वही हो,
तो नश्यमान तन में रुचि भी नहीं हो।
ऐसा न हो सुख नहीं दुख ही अतीव,
हैं वीतराग गुरु यों कहते सदीव॥४१॥

आतापनादि तप से तन को तपाया,
योगी बना, बिन दया निज को न पाया॥
पाया नहीं सुख कभी बहु दुःख पाया,
होता अहिंसक सुखी जिनदेव गाया ॥४२॥

दीखे परीषहजयी वह देखने में,
है लीन यद्यपि महाव्रत पालने में।
लक्ष्मी उसे तदपि है वरती न स्वामी,
जो मूढ़ है विषय लम्पट भूरिकामी ॥४३॥

लोहा सुवेष्टित रहे यदि वस्त्र से जो,
होगा नहीं कनक पारस संग से ओ।
तो संग के सहित जो तप भी करेंगे,
ना आत्म को परम पूत बना सकेंगे ॥४४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दावा यथा वनज हो वन को जलाता,
भाई तथा तप सही तन को जलाता।
सम्यक्त्व पूर्ण तप की महिमा यही है,
देवाधिदेव जिन ने जग को कही है॥४५॥

आशा निवास जिसमें करती नहीं है,
सम्यक्त्वबोध युत जो तप ही सही है।
ऐसा सदैव कहती प्रभु सन्त वाणी,
तृष्णा मिटे, झटिति पी अति शीत पानी॥४६॥

साधू समाधि करना भव मुक्त होना,
पा कीर्ति पूजन गुणी बन दुःख खोना।
ऐसा जिनेश कहते शिवमार्गनेता,
वेत्ता बने जगत के मन अक्ष जेता॥४७॥

ये आधि व्याधि समुपाधि सभी अनादि,
से आ रही, पर मिली न निजी समाधि।
चाहूँ समाधि, नहिं नाक नहीं किसी को,
चाहें सभी चतुर चेतन भी इसी को॥४८॥

मानी नहीं मुनि समाधि करा सकेगा,
तो वीरदेव निज को वह क्या ? लखेगा।
सम्मान मैं न उसका मुनि हो करूँगा,
शुद्धात्म को नित नितान्त अहो स्मरूँगा॥४९॥

वैराग्य का प्रथम पाठ अहो पढ़ाता,
पश्चात् प्रभो प्रथम देव बने प्रमाता।
मैं भी समाधि सधने बनता विरागी,
ऐसी मदीय मन में वर ज्योति जागी॥५०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

लाली लगे कर-लता अति शोभती है,
शोभे जिनेन्द्र नुति से मम भारती है।
होता परागवश वात सुगंधवाही,
शोभा तभी मुनि करे मुनि की समाधि॥५१॥

है भव्यकौमुद शशी जग में समाधि,
है कामधेनु सुर पादप से अनादि।
कैसे मुझे यह मिले कब तो मिलेगी?
हे वीर देव! कब ज्ञानकली खिलेगी॥५२॥

राजा प्रजाहित करे पर स्वार्थ त्यागे,
देता प्रकाश रवि है कुछ भी न मांगे।
कर्तव्य मानकर तू कर साधु सेवा,
पाले पुनः परम पावन बोधमेवा ॥५३॥

जो साधु सेवक नहीं उन मानियों को,
चाहूँ न मैं, नित भजूँ मुनि सज्जनों को।
क्या चाहता कृपण को परिवार प्यारा,
क्या प्यार से कुमुद ने रवि को निहारा ॥५४॥

जो पूर्ण पूरित दयामय भाव से है,
औ दूर भी विमलमानस मान से है।
सेवा सुसाधु जन की करता यहाँ है,
होता सुखी वह अवश्य जहाँ तहाँ है ॥५५॥

ये साधु सेवक कहीं मिलते यहाँ हैं,
जो जातरूप धरते जग में अहा है।
प्रत्येक नाग, मणि से कब शोभता है?
प्रत्येक गज कब मौक्तिक धारता है? ॥५६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जैसा सरोज अलि से सबको सुहाता,
उद्योग से जगत में यश देश पाता।
वैसा विराग मुनि से यह साधु सेवा,
होती सुशोभित अतीव विभो सदैवा ॥५७॥

मैं काय से वचन से मन से सदैवा,
सौभाग्य मान करता बुध साधु सेवा।
होऊँ अबन्ध भवबन्धन शीघ्र छूटे,
विज्ञान की किरण मानस मध्य फूटे ॥५८॥

बाधा बिना सहज से जिनसे निहारे,
जाते अनागत गतागत भाव सारे।
शुद्धात्म में निरत जो जिनदेव ज्ञानी,
वे विश्व पूज्य जयवन्त रहें अमानी ॥५९॥

हो पूर्ण इन्द्रियजयी जितकाम आप,
पाके अनंत सुख को तज पापताप।
क्रीड़ा सदैव करते शिवनारि साथ,
जोड़ूँ तुम्हें सतत हाथ, अनाथ-नाथ ॥६०॥

पीयूष पावन पवित्र पयोद धारा,
ज्यों तृप्त भूमि तल को करती सुचारा।
त्यों शान्ति दो दुखित हूँ भवताप से जो,
है प्रार्थना मम विभो! बस आप से यों ॥६१॥

हो मोह सर्प, तुम हो गरुणेन्द्रनामी,
हो मुक्तिपन्थ-अधिनायक, हो अमानी।
स्वामी, निरंजन, न अञ्जन की निशानी,
पूजूँ तुम्हें बन सकूँ द्रुत दिव्यज्ञानी ॥६२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

है आदि में स्वमन को फिर मार मारा,
हे आदिनाथ! तुमने-तज भोग सारा।
कामारि हो इसलिए जग में कहाते,
स्वामी! सुशीघ्र मम क्यों न व्यथा मिटाते॥६३॥

वे शान्त, सन्त, अरहन्त अनन्त ज्ञाता,
वन्दूँ उन्हें निरभिमान स्वभाव धाता।
होऊँ प्रवीण फलतः पल में प्रमाता,
गाता सुगीत 'जिनका' वह सौख्यपाता॥६४॥

इच्छा नहीं भवन की रखते कदापि,
आचार्य ये न वन से डरते प्रतापी।
होते विलीन निज में विधि पंक धोते,
पूजो इन्हें समय क्यों तुम व्यर्थ खोते ॥६५॥

शास्त्रानुसार चलते सबको चलाते,
पाते स्वकीय सुख को पर में न जाते।
ये रागरोष तजते सबकी उपेक्षा,
मैं तो अभी कुछ रखूँ उनकी अपेक्षा ॥६६॥

आचार्यदेव मुझको कुछ बोध देवो,
रक्षा करो शरण में शिशु शीघ्र लेवो।
क्या दिव्य अंजन प्रकाश नहीं दिलाता,
क्या शीघ्र नेत्रगत धूलि नहीं मिटाता?॥६७॥

ये योग में अचल मेरु बने हुए हैं,
ले खड्ग कर्मरिपु को दुख दे रहे हैं।
आचार्य तो अमृतपान करा रहे हैं,
ये मेघ हैं, हम मयूर सुखी हुए हैं ॥६८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

हो ज्येष्ठ में नित नहीं रवि ओ प्रतापी,
संतप्त पूर्ण करता जग को कुपापी।
आचार्य कोटि शत भास्कर तेज वाले,
देते सदा सुख हमें समदृष्टि वाले ॥६९॥

आचार्य को विनय से उर में बिठा लूँ,
मैं पूज्यपाद रज को शिरपै चढ़ा लूँ।
हे मित्र! मोक्ष मुझको फलतः मिलेगा,
विश्वास है यह नियोग नहीं टलेगा ॥७०॥

ज्ञाता बने समय के निज-गीत, गाते,
तो भी कदापि मद को मन में न लाते।
वे ही अवश्य उवझाय वशी कहाते,
भाई उन्हें स्मरण में तुम क्यों न लाते ॥७१॥

कालुष्यभाव रतिराग मिटा दिया है,
आत्मावलोकन तथा जिनने किया है।
पूजूँ भजूँ नित उन्हें दुख को तजूँगा,
विज्ञान से सहज ही निज को सजूँगा॥७२॥

तारा समूह नभ में जब दीख जाता,
दोषी शशी न दिन में निशि में सुहाता।
पै दोष मुक्त उवझाय सदा सुहाते,
ये श्रेष्ठ इष्ट शशि से जिन यों बताते ॥७३॥

स्वाध्याय से चपलता मन की घटा दी,
काषायिकी परिणति जिनने मिटा दी।
पावें सुशीघ्र उवझाय स्वसंपदा वे,
आवें न लौट भव में गुरु यों बतावें ॥७४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

साथी बना कुमुद का शशि पक्षपाती,
भाई सरोज दल का वह है अराती।
पै साम्यधार उवझाय सुखी बनाते,
हैं विश्व को, इसलिए सबको सुहाते ॥७५॥

वे वैद्य लौकिक शरीर इलाज जाने,
ये वैद्यराज भवनाशक हैं सयाने।
हैं वन्द्य, पूज्य, शिवपन्थ हमें बताते,
निःस्वार्थपूर्ण निज जीवन को बिताते ॥७६॥

था, है जिनागम, रहे जयवन्त आगे,
पूजो इसे तुम सभी उरबोध जागे।
पावो कदापि फिर ना भवदुःख नाना,
हो मोक्षलाभ, भव में फिर हो न आना॥७७॥

आता वसन्त वन में वन फूल जाता,
नाना प्रकार रस पी दुख भूल जाता।
पीऊँ जिनागम सुधा चिरकाल जीऊँ,
दैवादि शास्त्र मदिरा उसको न पीऊँ ॥७८॥

निष्पक्ष हो श्रमण आगम देखता है,
शुद्धात्म को सहज से वह जानता है।
जाके निवास करना निज धाम में ओ,
संदेह विस्मय नहीं इस काम में हो ॥७९॥

आधार ले अयि! जिनागम पूर्ण तेरा,
हैं भव्य जीव करते शिव में बसेरा।
मैं भी तुझे इसलिए दिन रैन ध्याऊँ,
धारूँ तुझे हृदय में सुख चैन पाऊँ ॥८०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ज्ञाता नहीं समय का दुख ही उठाता,
औ ना कभी विमल केवलज्ञान पाता।
राजा भले वह बने, निधि क्यों न पाले,
भाई न खोल सकता वह मोक्ष ताले ॥८१॥

श्रद्धा समेत जिन आगम को निहारें,
जो भी प्रभो! हृदय में समता सुधारे।
वे ही जिनेन्द्र पद का द्रुत लाभ लेते,
संसार का भ्रमण त्याग विराम लेते ॥८२॥

हो सूत्र में कुसुम सज्जन कण्ठ भाता,
निर्दोष ही कनक आदर नित्य पाता।
जैसी समादरित गाय सुधी जनों से,
वैसी सदैव समता मुनि सज्जनों से ॥८३॥

वर्षा हुई कृषक तो हल जोत लेगा,
बोया असामयिक बीज नहीं फलेगा।
तू देव वन्दन अकाल अरे! करेगा,
होगा न, मोक्ष तुझको भव में फिरेगा ॥८४॥

राजा सशस्त्र रण से जय लूट लाता,
हो दाँत, भोजन करो अति स्वाद आता।
सम्यक् जिनेन्द्रनुति भी सुख को दिलाती,
भाई निजानुभव पेय पिला जिलाती ॥८५॥

ज्यों वात जो सरित ऊपर हो चलेगा,
हो शीत, शीघ्र सब के मन को हरेगा।
आख्यान अन्त प्रति के बल पा विधाता,
आत्मा अवश्य बनता सुख पूर्ण पाता ॥८६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

प्राची प्रभात जब रागमयी सुहाती,
तो अंगराग लगता वनिता सुहाती।
पै राग से समनुरंजित कायक्लेश,
होता सुशोभित नहीं सुख हो न लेश ॥८७॥

दुर्वेदना हृदय की क्षण भाग जाती,
संवेदना स्वयम की झट जाग जाती।
ऐसी प्रतिक्रमण की महिमा निराली,
तू धार शीघ्र इसको बन भाग्यशाली ॥८८॥

भाई सुनो मदन से मन को बचाओ,
संसार के विषय में रुचि भी न लाओ।
पाओ निजानुभव को निज को जगाओ,
सद्धर्म की फिर अपूर्व प्रभावना हो ॥८९॥

संसार के विभव वित्त असार सारे,
सागार भी सतत यों मन में विचारें।
रोगी दुखी क्षुधित पीड़ित जो विचारे,
दे, अन्नपान उनके दुख को निवारें ॥९०॥

हे वीर देव! तव सेवक धर्म सेवें,
होवें ध्वजा विमल धर्म प्रसार में वे ।
सम्यक्त्वबोध व्रत से निज को सजावें,
ज्वाला बनें कुमत कानन को जलावें ॥९१॥

अच्छा लगे तिलक से ललना ललाट,
है साम्य से श्रमणता लगती विराट।
होता सुशोभित सरोवर कंज होते,
सद्भावना वश मनुष्य प्रशस्य होते ॥९२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

गंगा प्रदान करती बस शीत पानी,
तो गाय दूध दुहती जग में सयानी।
चाहूँ इन्हें न, इनसे न प्रयोजना है,
देती निजामृत जिनेन्द्र प्रभावना है ॥९३॥

संसार सागर असार अपार खारा,
कोई न धर्म बिन है तुमको सहारा।
नौका यही तरणतारण मोक्षदात्री,
ये जा रहे, कुछ गये उस पार यात्री ॥९४॥

गो वत्स में परम हार्दिक प्रेम जैसा,
साधर्मि में तुम करो यदि प्रेम वैसा।
शुद्धात्म को सहज से द्रुत पा सकोगे,
औ मोक्ष में अमित काल बिता सकोगे ॥९५॥

वात्सल्य हो उदित ओ उर में जभी से,
हैं क्रूरभाव मिटते सहसा तभी से।
भानू उगे गगन भू उजले दिखाते,
क्या आप तामस निशा तब देख पाते? ॥९६॥

निर्दोष हो अनल से झट लोह पिण्ड,
वात्सल्य से विमल आतम हो अखण्ड।
आलोक से सकललोक अलोक देखा,
यों वीर ने सदुपदेश दिया सुरेखा ॥९७॥

वात्सल्य तो जनम से तुम में भरा था,
सौभाग्य था सुकृत का झरना झरा था।
त्रैलोक्य पूज्य जिनदेव तभी हुए हो,
शुद्धात्म में प्रभव वैभव पा लिए हो ॥९८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

बन्धुत्व को जलज के प्रति भानू धारा,
मैत्री रखे सुजल में वह दुग्ध धारा।
स्वामी! परन्तु जग के सब प्राणियों में,
वात्सल्य हो, न मम केवल मानवों में ॥९९॥

उन्मत्त होकर कभी मन का न दास,
हो जा उदास सबसे बन वीर दास।
वात्सल्यरूप सर में डुबकी लगाले,
ले ले सुनाम 'जिन' का प्रभु गीत गा ले ॥१००॥

गुरु-स्मृति

आशीष लाभ यदि, मैं तुमसे न पाता,
तो भावनाशतक काव्य लिखा न जाता।
हे ज्ञानसागर गुरो! मुझको संभालो,
विद्यादिसागर बना तुममें मिला लो ॥१०१॥

जैन विद्यापीठ

श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र में वैशाख वदी अमावस्या, विक्रम संवत् २०३२ को संस्कृत 'भावनाशतकम्' की रचना पूर्णता को प्राप्त हुई।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

निरंजनशतक

(वसन्ततिलका छन्द)

सन्तों नमस्कृत सुरों बुध मानवों से,
ये हैं जिनेश्वर नमूँ मन वाक्तनों से।
पश्चात् करूँ स्तुति निरंजन की निराली,
मेरा प्रयोजन यही कि मिटे भवाली॥१॥

स्वामी! अनन्त-गुण-धाम बने हुए हो,
शोभायमान निज की द्युति से हुए हो।
मृत्युंजयी सकल-विज्ञ विभावनाशी,
वंदूँ तुम्हें, जिन बनूँ सकलावभासी ॥२॥

सच्चा निजी पद निरापद सम्पदा है,
तो दूसरा पद घृणास्पद आपदा है।
हे! भव्यकंजरवि! यों तुमने बताया,
शुद्धात्म से प्रभव वैभवभाव पाया ॥३॥

जो चाहता शिव सुखास्पद सम्पदा है,
वो पूजता तव पदाम्बुज सर्वदा है।
पाना जिसे कि धन है अयि 'वीर' देवा!
क्या निर्धनी धनिक की करता न सेवा? ॥४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सत् तेज से मदन को तुमने जलाया,
अन्वर्थ नाम फलरूप 'महेश' पाया।
नीराग हो अमित सन्मति विज्ञ प्यारे,
स्वामी मदीय मन को तुम ही सहारे॥५॥

हे! देव दो नयन के मिस से तुम्हारे,
हैं वस्तु को समझने नय मुख्य प्यारे।
यों जान, मान, हम लें उनका सहारा,
पावें अवश्य भवसागर का किनारा ॥६॥

उत्पाद ध्रौव्य व्यय भाव सुधारता हूँ,
चैतन्यरूप वसुधातल पालता हूँ।
पाते प्रवेश मुझमें तुम हो इसी से,
स्वामी! यहाँ अमित सागर में शशी से ॥७॥

जो आपमें निरत है सुख लाभ लेने,
आते न पास उसके विधि कष्ट देने।
क्या सिंह के निकट भी गज झुण्ड जाता?
जाके उसे भय दिखाकर क्या सताता ? ॥८॥

हे! शुद्ध! बुद्ध! मुनिपालक! बोधधारी!,
है कौन सक्षम कहे महिमा तुम्हारी ?
ऐसा स्वयं कह रही तुम भारती है,
शास्त्रज्ञ पूज्य गणनायक भी व्रती हैं ॥९॥

है आपने स्वतन की ममता मिटादी,
सच्चेतना सहज से निज में बिठादी।
लो! देह में इसलिए कनकाभ जागी,
मोहान्धकार विघटा, निज, ज्योति जागी ॥१०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

श्रीपाद ये कमल-कोमल लोक में हैं,
ये ही यहाँ शरण पंचम काल में हैं।
है भव्य कंज खिलता, इन दर्श पाता,
पूजूँ अतः हृदय में इनको बिठाता ॥११॥

लोहा बने कनक पारस संग पाके,
मैं शुद्ध किन्तु तुमसा तुम संग पाके।
वो तो रहा जड़, रहे तुम चेतना हो,
कैसा तुम्हें जड़ तुला पर तोलना हो? ॥१२॥

सानन्द भव्य तुम में लवलीन होता,
पाता स्वधाम सुख का, गुणधाम होता।
औ देह त्याग कर आत्मिक वीर्य पाता,
संसार में फिर कभी नहिं लौट आता ॥१३॥

काले घने भ्रमर से शिर में तुम्हारे,
ये केश हैं नहि विभो! जिनदेव! प्यारे।
ध्यानाग्नि से स्वयम को तुमने जलाया,
लो! सान्द्र धूम्र मिस बाहर राग आया ॥१४॥

लो! आपके सुभग-सौम्य-शरीर द्वारा,
दोषी शशी अयशधाम नितान्त हारा।
वो आपके चरण की नख के बहाने,
सेवा तभी कर रहा यश कान्ति पाने॥१५॥

लो आपकी सुखकरी कविता विभा से,
मोहान्धकार मिटता अविलम्बता से।
ज्योतिर्मयी अरुण है जब जाग जाता,
कैसे कहूँ कि तम है कब भाग जाता ? ॥१६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सौंदर्य पान कर भी मुख का तुम्हारे,
प्यासा रहा मन तभी, तुम यों पुकारे।
पीयूष पी निज, तृषा यदि है बुझाना,
बेटा! तुझे सहज शाश्वत शांति पाना ॥१७॥

मूँगे समा अधर पे स्मित सौम्य रेखा,
है प्रेम से कह रही मुझ को सुरेखा।
आनन्द वार्धि तुम में लहरा रहा है,
पूजूँ तुम्हें, बन दिगम्बर, भा रहा है ॥१८॥

नक्षत्र है गगन के इक कोन में ज्यों,
आकाश है दिख रहा तुम बोध में त्यों।
ऐसी अलौकिक विभा तुम ज्ञान की है,
मन्दातिमन्द पड़ती द्युति भानु की है ॥१९॥

है एक साथ तुममें यह विश्व सारा,
उत्पन्न हो मिट रहा ध्रुव भाव धारा।
कल्लोल के सम सरोवर में न स्वामी!
पै ज्ञेय ज्ञायकतया, शिवपंथगामी ॥२०॥

मैं रागत्याग तुझमें अनुराग लाके,
होता सुखी कि जितना लघु ज्ञान पाके।
तेरी बृहस्पति सुभक्ति करें, तथापि,
हो स्वर्ग में नहिं सुखी उतना कदापि ॥२१॥

ज्यों ही मदीय मन है तव स्पर्श पाता,
त्यों ही त्वदीय सम भासुर हो सुहाता।
रागी विराग बनता तव संघ में हैं,
लो ! नीर, दूध बनता गिर दूध में है ॥२२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मानूँ तुम्हें तुम शशी तुम में भरी हैं,
सच्ची सुधा गुणमयी मन को हरी है।
ऐसा न हो, मम मनोमणि से भला यों,
सम्यक्त्वरूप झरना, झर है रहा क्यों? ॥२३॥

सम्मोह से भ्रमित हो जग पाप पाता,
पै आपका मन नहीं अघ ताप पाता।
लोहा स्वभाव तजता जब जंग खाता,
हो पंक में कनक पै सब को सुहाता ॥२४॥

हो केवली तुम बली शुचि शान्त शाला,
ऐसा तुम्हें कब लखे अघ दृष्टि वाला।
हो पीलिया नयन रोग जिसे हमेशा,
पीला शशी नियम से दिखता जिनेशा ॥२५॥

ऐसी कृपा यह हुई मुझपे तुम्हारी,
आस्था जगी कि तुममें मम निर्विकारी।
संसार भोग फलतः रुचते नहीं हैं,
प्रत्यक्ष मात्र तुम हो जड़ गौण ही है ॥२६॥

स्वामी! निवास करते मुझमें सुजागा,
आत्मानुराग फलतः पर राग भागा।
लो दूध में जब कि माणिक ही गिरेगा,
क्या लाल लाल तब दूध नहीं बनेगा? ॥२७॥

वैराग्य से तुम सुखी भज के अहिंसा,
होता दुखी जगत है कर राग हिंसा।
सत् साधना सहज साध्य सदा दिलाती,
दुःसाधना दुखमयी विष ही पिलाती ॥२८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

श्रद्धा समेत तुम में रममान होता,
वो ओज तेज तुम सा स्वयमेव ढोता।
काया हि कंचन बने कि अचेतना हो,
आश्चर्य क्या? द्युतिमयी यदि चेतना हो ॥२९॥

जैसा कि वृक्ष फल फूल लदा सुहाता,
माथा, धरा जननि के पद में झुकाता।
ऐसे लगे कि गुण भार लिए हुए हो,
चैतन्यरूप-जननी पद में झुके हो ॥३०॥

छत्रादि स्वर्णमय वैभव पा लिए हो,
स्वामी! न किन्तु उनसे चिपके हुए हो।
तेरी अपूर्व गरिमा गणनायकों से,
जाती कही न फिर क्या? हम बालकों से ॥३१॥

विज्ञानरूप रमणी तुममें शिवाली,
जैसी लसी अमित अव्यय कांतिवाली।
वैसी नहीं शशिकला शशि में निराली,
अत्यन्त चूँकि कुटिला व्यय-शीलवाली ॥३२॥

देखा विभामय विभो मुख आपका है,
ऐसा मुझे सुख मिला नहिं नाप का है।
जैसा यहाँ गरजता लख मेघ को है,
पाता मयूर सुख भूलत खेद को है ॥३३॥

सर्वज्ञ हो इसलिए विभु हो कहाते,
निस्संग हो इसलिए सुख चैन पाते।
मैं सर्वसंग तजके तुम संग से हूँ,
आश्चर्य आत्म सुख लीन अनंग से हूँ ॥३४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आकाश में उदित हो रवि विश्वतापी,
संतप्त त्रस्त करता जग को प्रतापी।
पै आप कोटि रवि तेज स्वभाव पाये,
बैठे मदीय उर में न मुझे जलाये ॥३५॥

वे कामधेनु सुरपादप स्वर्ग में ही,
सीमा लिए दुख घुले सुख दें, विदेही!
पै आपका स्तवन शाश्वत मोक्ष-दाता,
ऐसा वसन्ततिलका यह छन्द गाता ॥३६॥

जो आपकी स्तुति सरोवर में घुली है,
मेरी खरी श्रमणता शुचि हो धुली है।
तो साधु स्तुत्य मम क्यों न सुचेतना हो?
औ शीघ्र क्यों न कल-केवल-केतना हो? ॥३७॥

तल्लीन नित्य निज में तुम हो खुशी से,
नीरादि से परम शीतल हो इसी से।
पा अग्नि योग जल है जलता जलाता,
कर्माग्नि से तुम नहीं, यह साधु गाथा ॥३८॥

लो आपकी रमणि एक गुणावली है,
दूजी सती विशदकीर्तिमयी भली है!
पै एक तो रम रही नित आप में है,
कैसा विरोध यह? एक दिगंत में है ॥३९॥

देवाधिदेव मुनिवन्द्य कुकाम वैरी,
पाती प्रवेश तुम में मति हर्ष मेरी।
जैसी नदी अमित सागर में समाती,
होती सुखी मिलन से दुख भूल जाती ॥४०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

उत्फुल्ल नीरज खिले तुम नेत्र प्यारे,
हैं शोभते करुण केशर पूर्ण धारें।
मेरा वहीं पर अतः मन स्थान पाता,
जैसा सरोज पर जा अलि बैठ जाता ॥४१॥

हैं आप दीनजनरक्षक, साधु माने,
दावा प्रचण्ड विधि कानन को जलाने।
पंचेंद्रि-मत्त-गज-अंकुश हैं सुहाते,
हैं मेघ विश्वमदताप-तृषा बुझाते ॥४२॥

चारों गती मिट गयी तुम ईश! शम्भू,
हो ज्ञान पूर निजगम्य अतः स्वयम्भू।
ध्यानाग्नि दीप्त मम हो तुम वात हो तो,
संसार नष्ट मम हो तुम हाथ हो तो ॥४३॥

हो आपको नमन तो सघना अघाली,
पाती विनाश पल में दुखशील वाली।
फैला पयोद दल हो नभ में भले ही,
थोड़ा चले पवन तो बिखरे उड़े ही ॥४४॥

श्रीपाद मानस सरोवर आपका है,
होते सुशोभित जहाँ नख मौक्तिका हैं।
स्वामी! तभी मनस हंस मदीय जाता,
प्रायः वहीं विचरता चुग मोति खाता ॥४५॥

लो! आपके चरण में भवभीत मेरा,
विश्रान्त है अभय पा मन है अकेला।
माँ का उदारतम अंक अवश्य होता,
निःशंक हो शरण पा शिशु चूँकि सोता ॥४६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

हो वर्धमान गतमान प्रमाणधारी,
क्यों ना सुखी तुम बनो जब निर्विकारी।
स्वात्मस्थ हो अभय हो मन अक्षजेता,
हो दुःख से बहुत दूर निजात्मवेत्ता ॥४७॥

सन्मार्ग पे विचरता मुनि हो अकेला,
स्वामी! हुआ बहुत काल व्यतीत मेरा।
मेरे थके पग अभी कितना विहारा,
बोलो कि दूर कितना तुम धाम प्यारा ॥४८॥

स्वामी अपूर्व रवि हो द्युति धाम प्यारे,
ये तेज हीन रवि सन्मुख हो तुम्हारे।
मानों नहीं स्वयम को रवि हे विरागी!
क्यों अग्नि है मम तपो मणि में सुजागी? ॥४९॥

हे ईश धीश मुझमें बल बोधि डालो!
कारुण्य धाम करुणा मुझमें दिखा लो।
देहात्म में बस विभाजन तो करूँगा,
शीघ्रातिशीघ्र सुख भाजन तो बनूँगा ॥५०॥

विज्ञान से शमित की रति की निशा है,
पाया प्रकाश तुमने निज की दशा है।
तो भी निवास करते मुझमें विरागी!
आलोक धाम तुम हो, तम मैं सरागी ॥५१॥

शुद्धात्म में तुम सुनिश्चय से बसे हो,
जो जानते जगत को व्यवहार से हो।
होती सदा सहजवृत्ति सुधी जनों की,
इच्छामयी विकृतवृत्ति कुधी जनों की ॥५२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

संसार को निरखते न यथार्थ में हैं,
लो आप केवल निजीय पदार्थ में हैं।
संसार ही झलकता दृग में तथा हैं,
नाना पदार्थ दल दर्पण में यथा हैं ॥५३॥

स्वादी तुम्हीं समयसार स्वसम्पदा के,
आदी कुधी सम नहीं जड़ सम्पदा के।
औचित्य है भ्रमर जीवन उच्च जीता,
मक्खी समा मल न, पुष्प पराग पीता ॥५४॥

है वस्तुतः जड़ अचेतन ही तुम्हारी,
वाणी तथापि जग पूज्य प्रमाण प्यारी।
है एक हेतु इसमें तुमने निहारा,
विज्ञान के बल अलोक त्रिलोक सारा ॥५५॥

सम्यक्त्व आदिक निजी बल मोक्षदाता,
वे ही अपूर्ण जब लौं सुर सौख्यधाता।
औचित्य वस्त्र बनता निज तन्तुओं से,
ऐसा कहा कि तुमने मित सत् पदों से ॥५६॥

होता विलीन भवदीय उपासना में,
तो भूलता सहज ही सुख याचना मैं ।
जो डूबता जलधि में मणि ढूँढ़ लाने,
क्या मांगता जलधि से मणि दे! सयाने ॥५७॥

औचित्य! है प्रथम अम्बर को हटाया,
पश्चात् दिगम्बर विभो! मन को बनाया।
रे! धान का प्रथम तो छिलका उतारो,
लाली उतार, फिर भात पका, उड़ालो ॥५८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

शंका न मृत्यु भय ने सबको हराया,
संसार ने तब परिग्रह को सजाया।
हे सेव्य! हे अभय! सेवक मैं विरागी,
मैं भी बनूँ अभय जो सब ग्रन्थत्यागी ॥५९॥

जो देह नेह मद को तजना कहाता!
स्वामी! अतीन्द्रिय वही सुख है सुहाता।
तेरे सुशान्त मुख को लख हो रहा है,
ऐसा विबोध, मन का मल धो रहा है ॥६०॥

गंभीर सागर नहीं शशि दर्श पाता,
गांभीर्य त्याग तट बाहर भाग आता।
गंभीर आप रहते निज में इसी से,
होते प्रभावित नहीं जग में किसी से ॥६१॥

है चाहता अबुध ही तुम पास आना,
धारे बिना नियम संयम शील बाना।
धीमान कौन वह है! श्रम देख रोये,
चाहे यहाँ सुफल क्या बिन बीज बोये ॥६२॥

शुद्धात्म में रुचि बिना शिवसाधना है,
रे निर्विवाद यह आत्मविराधना है।
हो आत्मघात शिर से गिरि फोड़ने से,
तेरा यही मत इसे सुख मानने से ॥६३॥

ना आत्म तृप्ति उदयागत पुण्य में है,
वो शांति की लहर ना शशिबिम्ब में है।
जो आपके चरण का कर स्पर्श पाया,
आनन्द ईदृश कहीं अब लौं न पाया ॥६४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

स्वामी! निजानुभवरूप समाधि द्वारा,
पाया, मिटी-भव-भवाब्धि, भवाब्धि पारा।
ये धैर्य धार बुध साधु समाधि साधें,
साधें अतः सहज को निज को अराधें ॥६५॥

है वज्र, कर्म-धरणी-धर को गिराता,
दावा बना कुमत कानन को जलाता।
ऐसा रहा सुखद शासन शुद्ध तेरा,
पाथेय पंथ बन जाय सहाय मेरा ॥६६॥

हो तेज भानु भवसागर को सुखाने,
गंगा तुम्हीं तृषित की कुतृषा बुझाने।
हो जाल इंद्रियमयी मछली मिटाने,
मैं भी, तुम्हें सुबुध भी, इस भाँति मानें ॥६७॥

मेरी मती स्तुति सरोवर में रहेगी,
होगी मदाग्नि मुझमें, रह क्या करेगी।
पीयूष सिंधु भर में विषबिन्दु क्या है?
अस्तित्व हो पर प्रभाव दबाव क्या है?॥६८॥

स्याद्वादरूप मत में, मत अन्य खारे,
ज्यों ही मिले मधुर हो बन जाएं प्यारे।
मात्रानुसार यदि भोजन में मिलाओ,
खारा भले लवण हो अति स्वाद पाओ ॥६९॥

ले आपकी प्रथम मैं स्तुति का सहारा,
पश्चात् नितांत निज में करता विहारा।
ज्यों बीच बीच निज पंख विहंग फैला,
फैला विहार करता नभ में अकेला ॥७०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मिथ्यात्व से भ्रमित चित्त सही नहीं है,
तेरे उसे वचन ये रुचते नहीं हैं।
मिश्री मिला पय उसे रुचता कहाँ है?
जो दीन पीड़ित दुखी ज्वर से अहा है ॥७१॥

लालित्य पूर्ण कविता लिख के तुम्हारी,
होते अनेक कवि हैं कवि नामधारी।
मैं भी सुकाव्य लिख के कवि तो हुआ हूँ,
आश्चर्य तो यह निजानुभवी हुआ हूँ ॥७२॥

श्रद्धासमेत तुमको यदि जानता है,
शुद्धात्म को वह अवश्य पिछानता है।
धूवाँ दिखा अनल का अनुमान होता,
है तर्क शास्त्र पढ़ते दृढ़ बोध होता ॥७३॥

मोहादि कर्म मल को तुमने मिटाया,
स्वामी स्वकीय पद शाश्वत सौख्य पाया।
लेता सहार मुनि हो अब मैं तुम्हारा,
तोता जहाज तज कुत्र उड़े विचारा ॥७४॥

त्यों आपके स्तवन की किरणावली है,
पाती प्रवेश मुझमें सुखदा भली है।
ज्यों ज्योति पुंज रवि की प्रखरा प्रभाली,
हो रंध्र में सदन के घुसती निराली ॥७५॥

कामारिरूप तुम में मन को लगाता,
है वस्तुतः मुनि मनोभव को मिटाता।
हो जाय नाश जब कारण का तथापि,
क्या कार्य का जनम हो जग में कदापि ॥७६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

स्वामी तुम्हें न जिसने रुचि से निहारा,
देता उसे न 'दृग' दर्शन है तुम्हारा।
जो अन्ध है, विमल दर्पण क्या करेगा,
क्या नेत्र देकर कृतार्थ उसे करेगा? ॥७७॥

वाणी सुधा सदृश सज्जन संगती से,
तेरी, बने कलुष दुर्जन संगती से।
औचित्य मेघ जल है गिरता नदी में,
तो स्वाद्य पेय बनता, विष हो अही में ॥७८॥

जैसा सुशान्त रस वो मम आत्म से है,
धारा प्रवाह झरता इस काव्य से है।
वैसा कहाँ झर रहा शशि बिंब से है,
पूजें तुम्हें तदपि दूर सुवृत्त से है ॥७९॥

संसार के विविध वैभव भोग पाने,
पूजें तुम्हें बस कुधी जड़, ना सयाने।
ले स्वर्ण का हल, कृषि करता कराता,
वो मूर्ख ही कृषक है जग में कहाता ॥८०॥

है मोह नष्ट तुममें फिर अन्न से क्या?
त्यागा असंयम, सुसंयम भार से क्या?
मारा कुमार तुमने फिर वस्त्र से क्या?
हैं पूज्य ही बन गये, पर पूज्य से क्या? ॥८१॥

मेरा जभी मन बना शिवपंथगामी,
संसार भोग उसको रुचते न स्वामी।
धीमान कौन वह है घृत छोड़ देगा,
क्या! मान के परम नीरस छाछ लेगा ॥८२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मेरी भली विकृति पै मति चेतना है,
चैतन्य से उदित है जिन-देशना है।
कल्लोल के बिन सरोवर तो मिलेगा,
कल्लोल वो बिन सरोवर क्या मिलेगा? ॥८३॥

लो! आपके स्तवन से बहु निर्जरा हो,
स्वामी! तथापि विधिबंधन भी जरा हो।
अच्छी दुकान चलती धन खूब देती,
तो भी किराय कम से कम क्या न लेती? ॥८४॥

वो आपकी सकल वस्तुप्रकाशिनी है,
नासा प्रमाणमय, विभ्रम-नाशिनी है।
नासाग्र पे इसलिए तुम साम्यदृष्टि,
आसीन है सतत शाश्वत शान्ति सृष्टि ॥८५॥

हैं आप नम्र गुरु चूँकि भरे गुणों से,
हैं पूज्य राम निज में रमते युगों से।
पी, पी, पराग निजबोधन की सुखी हैं,
नीराग हैं, पुरुष हैं, प्रकृतीं तजीं हैं ॥८६॥

हो धीर वीर तुम चूँकि निजात्म जेता,
मारा कुमार तुमने शिव साधु नेता।
सर्वज्ञ हो इसलिए तुम सर्वव्यापी,
बैठे मदीय मन में अणु हो तथापि ॥८७॥

साता नहीं उदय में जब हो असाता,
मैं आपके भजन में बस डूब जाता।
है चन्द्र को निरखता सघनी निशा में,
जैसा चकोर रुचि से न कभी दिवा में ॥८८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

धाता तुम्हीं अभय दे जग को जिलाते,
नेता तुम्हीं सहज सत्पथ भी दिखाते।
मृत्युंजयी बन गये भगवान् कहाते,
सौभाग्य है, कि मम मन्दिर में सुहाते ॥८९॥

ऐसी मुझे दिख रही तुम भाल पे है,
जो बाल की लटकती लट गाल पे है।
तालाब में कमल पे अलि भा रहा हो,
संगीत ही गुनगुना कर गा रहा हो ॥९०॥

काले घने कुटिल चिक्कण केश प्यारे,
ऐसे मुझे दिख रहे शिर के तुम्हारे।
जैसे कहीं मलयचन्दन वृक्ष से ही,
हो कृष्ण नाग लिपटे अयि दिव्य देही! ॥९१॥

चाहूँ न राज सुख मैं सुरसम्पदा भी,
चाहूँ न मान यश देह नहीं कदापि।
हे ईश गर्दभ समा तन भार ढोना,
कैसे मिटे, कब मिटे, मुझको कहो ना ! ॥९२॥

मेरी सुसुप्त उस केवल की दशा में,
ये आपकी सहज तैर रहीं दशायें।
यों आपका कह रहा श्रुत सत्य प्यारा,
मैंने उसे सुन गुना रुचि संग धारा ॥९३॥

संसार से विरत हूँ तुम ज्योति में हूँ,
निस्तेज कर्म मुझमें जब होश में हूँ।
बैठा रहे निकट नाग कराल काला,
टूटा हुआ, कि जिसका विषदन्त भाला ॥९४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विज्ञान से अति सुखी बुध वीतरागी,
अज्ञान से नित दुखी मद-मत्त, रागी।
ऐसा सदा कह रहा मत आपका है,
धर्मात्म का सहचरी, रिपु पाप का है ॥९५॥

हो आज सीमित भले मम ज्ञान धारा,
होगी असीम तुम आश्रय पा अपारा।
प्रारम्भ में सरित हो पतली भले ही,
पै अन्त में अमित सागर में ढले ही ॥९६॥

लो आपके सुखमयी पदपंकजों में,
श्रद्धासमेत नत हूँ तब लौं विभो मैं।
विज्ञानरूप रमणी मम सामने आ,
ना नाच गान करती जब लौं न नेहा ॥९७॥

स्वामी तुम्हें निरख सादर नेत्र दोनों,
आरूढ़ मोक्षपथ हों मम पैर दोनों।
ले ईश नाम रसना, शिर तो नती से,
यों अंग अंग हरषे तुम संगती से ॥९८॥

हो मृत्यु से रहित अक्षर हो कहाते,
हो शुद्ध जीव जड़ अक्षर हो न तातैं।
तो भी तुम्हें न बिन अक्षर जान पाया,
स्वामी अतः स्तवन अक्षर से रचाया ॥९९॥

चाहूँ कभी न दिवि को अयि वीर स्वामी,
पीऊँ सुधारस स्वकीय बनूँ न कामी।
पा ज्ञानसागर सुमंथन से सुविद्या,
विद्यादिसागर बनूँ तज दूँ अविद्या ॥१००॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

परीषहजयशतक

(ज्ञानोदय छन्द)

हे जिनवर! तव चरण समागम, सुर-सुख शिव-सुख शान्त रहा,
तव गुणगण का सतत स्मरण ही, परमागम निर्भ्रान्त रहा।
विषय-रसिक हैं, कुधी रहे हैं, अनुपम-अधिगम नहीं मिले,
विरहित रति से रहूँ इसी से, बोध-कला उर सही खिले॥१॥

नभ में रवि-सम यतनशील हैं, यति-नायक सुखकारक हैं,
ज्ञान-भाव से भरित-झील हैं, श्रुतिकारक-दुखहारक हैं।
सकल विश्व को सकल ज्ञान से, जान रहे शिवशंकर हैं,
गति-मति-रति से रहित रहे हैं, हम सब उनके किंकर हैं॥२॥

दुख में, सुख में तथा अशुभ-शुभ में नियमित रखते समता,
शुचितम चेतन को नमते हैं श्रमण, श्रमणता से ममता।
यम-संयम-दम-शम भावों का लेता सविनय शरण अतः,
विभाव-भावों दुर्भावों का क्षरण शीघ्र हो, मरण स्वतः॥३॥

मृदुल विषयमय लता जलाती शीतलतम हिमपात वही,
शान्त शारदा, शरण उसी की ले जीता दिन-रात सही।
'शतक परीषह-जय' कहता बस मुनिजन, बुधजन मन हरसे,
मूल सहित सब अघ संघर से ज्ञान-मेघ फिर झट बरसे॥४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

उदय असाता का जब होता, उलटी दिखती सुखदा है,
प्रथम भूमिका में ही होती, क्षुधावेदना दुखदा है।
समरस-रसिया ऋषि समता से, सब सहता, निज-ज्ञाता है,
सब का सब यह विधि फल तो है 'समयसार' सुन! गाता है॥५॥

क्षुधा-परीषह सुधीजनों को देता सद्गति-सम्पद है,
और मिटाता नियमरूप से दुस्सह विधिफल आपद है।
कुधीजनों को किन्तु पटकता कुगतिकुण्ड में कष्ट रहा,
विषय-रसिक हो दुखी जगत है सुखी जगत कह स्पष्ट रहा॥६॥

कनक, कनकपाषाण नियम से, अनल योग से जिस विध है,
क्षुधा-परीषह सहते बनते, शुचितम मुनिजन उस विध है।
क्षुधा विजय सो काम विजेता मुनियों से भी वन्दित है,
शिव-पथ पर पाथेय रहा है जिन-मत से अभिनन्दित है ॥७॥

आगम के अनुकूल किया यदि, किसी साधु ने अनशन है,
असमय में फिर अशन त्याज्य है, अशन-कथा तक अशरण है।
वीतराग सर्वज्ञदेव ने, आगम में यों कथन किया,
श्रवण किया कर सदा उसी का, मनन किया कर, मथन जिया॥८॥

स्वर्णिम, सुरभित, सुभग, सौम्यतन, सुर-पुर में वर सुरसुख है,
उन्हें शीघ्र से मिलता शुचितम, शाश्वत, भास्वत-शिवसुख है।
वीतराग-विज्ञान सहित जो, क्षुधा-परीषह सहते हैं,
दूर पाप से हुए आप हैं, बुधजन जग को कहते हैं ॥९॥

पाप-ताप का कारण तन की, ममता का बस वमन किया,
शमी-दमी, मतिमान मुनी ने, समता के प्रति नमन किया।
विमल बोधमय, सुधा चाव से, तथा निरन्तर पीता है,
उसे तृषा फिर नहीं सताती, सुखमय जीवन जीता है ॥१०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

कषाय रिपु का शमन किया है, सने स्व-रस में गुणी बने,
नम्र नीत, भवभीत रीत हो अघ से, तप के धनी बने।
मुक्ति-रमा आ जिनके सम्मुख, नाच नाचती मुदित हुई,
मनो इसी से तृषा जल रही, ईर्ष्या करती कुपित हुई॥११॥

निरालम्ब हो, स्वावलम्ब हो, जीवन जीते मुनिवर हैं,
कभी तृषा या अन्य किसी वश, कुपित बनें ना, मतिवर हैं।
श्वान भौंकते सौ-सौ मिलकर, पीछे-पीछे चलते हैं,
विचलित कब हो गजदल आगे ललित चाल से चलते हैं॥१२॥

व्यय-उद्भव-ध्रुव-लक्षण से जो, परिलक्षित है खरा रहा,
चिन्मय गुण से रचा गया है, सम-रस से है भरा रहा।
मनो कभी मुनि तृषित हुआ हो, निज में तब अवगाहित हो,
जैसा सागर में शशि होता, निश्चित सुख से भावित हो॥१३॥

रव-रव नरकों में वे नारक, तृषित हुए हैं, व्यथित हुए,
सदय हृदय नहिं अदय बने हैं, प्राण कण्ठगत मथित हुए।
उस जीवन से निज जीवन की, तुलना कर मुनि कहते हैं,
वहाँ सिन्धु-सम दुःख रहा तो, यहाँ बिन्दु हम सहते हैं॥१४॥

शीत-शील का अविरल-अविकल, बहता जब है अनिल महा,
ऐसा अनुभव जन-जन करते, अमृत मूल्य का अनल रहा।
पग से शिर तक कपड़ा पहना, कप-कप कपता जगत रहा,
किन्तु दिगम्बर मुनिपद से नहिं, विचलित हो मुनि-जगत रहा ॥१५॥

तरुण-अरुण की किरणावलि भी, मन्द पड़ी कुछ जान नहीं,
शिशिर वात से ठिठुर शिथिल हो, भानु उगा पर, भान नहीं।
तभी निशा वह बड़ी हुई है, लघुतम दिन भी बना तभी,
पर! परवश मुनि नहीं हुआ है, सो मम उर में ठना अभी ॥१६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

यम-दम-शम-सम से मुनि का मन, अचल हुआ है विमल रहा,
महातेज हो धधक रहा है, जिसमें तप का अनल महा।
बाधा क्या फिर बाह्य गात पे, होता हो हिमपात भले,
जीवन जिनका सुखित हुआ हम, उन पद में प्रणिपात करें॥१७॥

भय लगता है नभ में काले, जल वाले घन डोल रहे,
बीच-बीच में बिजली तड़की, घुमड़-घुमड़ कर बोल रहे।
वज्रपात से चूर हो रहे अचल, अचल भी चलित हुए,
फिर भी निश्चल मुनि रहते हैं, शिव मिलता, सुख फलित हुए॥१८॥

चण्ड रहा मार्तण्ड ग्रीष्म में, विषयी-जन को दुखद रहा,
आत्मजयी ऋषिवशीजनों को, दुखद नहीं, शिव सुखद रहा।
प्रखर, प्रखरतर किरण प्रभाकर, की रुचिकर ना कण-कण को,
कोमल-कोमल कमलदलों को खुला खिलाती क्षण-क्षण को॥१९॥

सरिता, सरवर सारे सूखे, सूरज शासन सक्त रहा,
सरसिज, जलचर कहाँ रहे फिर?, जीवन साधन लुप्त रहा।
इतनी गरमी घनी पड़ी पर, करते मुनि प्रतिकार नहीं,
शान्ति सुधा का पान करें नित, तन के प्रति ममकार नहीं॥२०॥

सुरमा, काजल, गंगा का जल, मलयाचल का चन्दन है,
शरद चन्द्र की शीतल किरणें मणि माला, मनरंजन है।
मन में लाते तक ना इनको, शान्त बनाने तन-मन को,
मुनि कहलाते पूज्य हमारे जिनवर कहते भविजन को ॥२१॥

महाप्रतापी, भू-नभ तापी, अभिशापी रवि बना रहा,
वन हारे, तरु सारे, खारे पत्र फूल के बिना अहा!
किन्तु पराजित नहीं मुनीश्वर, जित-इन्द्रिय हो राजित हैं,
हृदय-कमल पर उन्हें बिठाऊँ , त्रिभुवन से आराधित हैं ॥२२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तन से, मन से और वचन से, उष्ण परीषह सहते हैं,
निरीह तन से हो निज ध्याते, बहाव में ना बहते हैं।
परम तत्त्व का बोध नियम से, पाते यति जयशील रहे,
उनकी यशगाथा गाने में, निशिदिन यह मन लीन रहे ॥२३॥

विषयों को तो त्याग-पत्र दे, व्रतधर शिवपथगामी हैं,
मत्कुण मच्छर काट रहे अहि, दया-धर्म के स्वामी हैं।
कभी किसी प्रतिकूल दशा में, मुनि-मानस नहिं कलुषित हो,
शुचितम मानस सरवर-सा है, सदा निराकुल विलसित हो ॥२४॥

चराचरों से मैत्री रखते, कभी किसी से वैर नहीं,
निलय दया के बने हुए हैं, नियमित चलते स्वैर नहीं।
तन से, मन से और वचन से, करें किसी को व्यथित नहीं,
सुबुध जनों से पूजित होते, मान-गान से सहित सही॥२५॥

मत्कुण आदिक रुधिर पी रहे, पी लेने दो, जीने दो,
तव शुभ स्तुत की सुधा चाव से, मुझे पेट भर पीने दो।
तीन लोक के पूज्य पितामह!, इससे मुझको व्यथा नहीं,
यथार्थ चेतन पदार्थ मैं हूँ, तन से 'पर' मम कथा यही॥२६॥

दंश मसक ये कीट पतंगे, पल भर भी तो सुखित नहीं,
पाप पाक से पतित पले हैं, क्षुधा तृषा से दुखित यहीं।
कब तो इनका भाग्य खुले, कब निशा टले, कब उषा मिले,
सन्त सदा यों चिंतन करते, दिशा मिले, निज दशा मिले ॥२७॥

निरा, निरापद, निजपद दाता, यही दिगम्बर पद साता,
पाप-प्रदाता आपद-धाता, शेष सभी पद गुरु गाता।
हुए दिगम्बर अम्बर तजकर, यही सोच कर मुनिवर हैं,
शिवपथ पर अविरल चलते हैं, हे जिनवर! तव अनुचर हैं ॥२८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अपने ऊपर पूर्ण दया कर, विषय-वासना त्याग दिया,
नग्न परीषह सहते तजकर वस्त्र, निजी में राग किया।
अनुपम, अव्यय वैभव पाते, लौट नहीं भव में आते,
वस्त्र, वासना जो ना तजते, भ्रमते भव-भव में तातैं ॥२९॥

यहाँ अचेतन पुद्गल आदिक, निज-निज गुण के केतन हैं,
आदि मध्य औ अन्त रहित हैं, ज्ञान-निलय हैं, चेतन हैं।
यथार्थ में तो पदार्थ-दल से, भरा जगत् यह शाश्वत है,
निरावरण है, निरा दिगम्बर, स्वयं आप 'बस' भास्वत हैं ॥३०॥

बिना घृणा के नग्नरूप धन, मुनिवर प्रमुदित रहते हैं,
भवदुखहारक, शिवसुखकारक, दुस्सह परिषह सहते हैं।
लालन-पालन, लाड़-प्यार से, सुत का करती ज्यों जननी,
कुलदीपक यदि बुझता है तो, रुदन मचाती है गुणिनी ॥३१॥

इन्द्रिय जिनसे चंचल होती, उन विषयों से विरत हुए,
इन्द्रियविजयी, विजितमना हैं, निशिदिन निज में निरत हुए
अविरति रति से मौन हुए हैं, अरति परीषह जीत रहें,
जिनवर वाणी करुणा कर-कर, कहती यों भवभीत रहें ॥३२॥

सड़ा-गला शव मरा पड़ा जो, बिना गड़ा, अधगड़ा जला,
भीड़ चील की चीर-चीरकर, जिसे खा रही हिला-हिला।
दृश्य भयावह लखते-सुनते, गजारिगर्जन मरघट में,
किन्तु ग्लानि-भय कभी न करते, रहते मुनिवर निज घट में ॥३३॥

विषय-वासना जिनसे बढ़ती, उन शास्त्रों से दूर रहें,
विराग बढ़ता जिनसे उनको, पढ़ें साम्य से पूर रहें।
विगत काल के भुक्त भोग को, कभी न मन में लाते हैं,
प्राप्तकाल सब सुधी बिताते, निजी रमन में तातैं हैं ॥३४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आगम के अनुकूल साधु हो, अरति परीषह सहते हैं,
कलुषित मन की भाव-प्रणाली, मिटती गुरुवर कहते हैं।
प्रतिफल मिलता दृढ़तम, शुचितम, दिव्यदृष्टि झट खुलती है,
नियमरूप से शिवसुख मिलता, ज्योत्स्ना जगमग जलती है ॥३५॥

विशाल विस्फारित मंजुलतम, चंचल लोचन वाली हो,
कामदेव के मार्दव मानस, को भी लोभन वाली हो।
मुख पर ले मुस्कान मन्दतम, गजसम गमनाशीला हो,
उस प्रमदा के वश मुनि ना हो, अद्‌भुत चिन्मय लीला हो ॥३६॥

सदा मुक्त-उन्मुक्त विचरती, मत्त स्वैरिणी मोहित है,
तभी कहाती प्रमदा जग में, बुधजन से अनुमोदित है।
वन में, उपवन में, कानन में, स्मित वदना कुछ बोल रही,
निर्विकार यति बने रहे वे, उनकी दृग अनमोल रही ॥३७॥

लाल कमल की आभा-सी तन वाली हैं सुर वनिताएँ,
नील कमल-सम विलसित जिनके, लोचन हैं सुख-सुविधाएँ।
किन्तु स्वल्प भी विषय-वासना, जगा न सकती मुनि मन में,
सुखदा, समता, सती, छबीली, क्योंकि निवसती है उनमें ॥३८॥

शीलवती है, रूपवती है, दुर्लभतम है वरण किया,
समता रमणी से निशिदिन जो, श्रमण बना है रमण किया।
फिर किस विध वह नश्वर को जो भवदा दुखदा वनिता है,
कभी भूलकर क्या चाहेगा? पूछ रही यह कविता है ॥३९॥

कठिन कार्य है खरतर तपना, करने उन्नत तपगुण को,
पूर्ण मिटाने भव के कारण, चंचल मन के अवगुण को।
दया वधू को मात्र साथ ले, वाहन बिन मुनि पथ चलते,
आगम को ही आँख बनायें, निर्मद जिनके विधि हिलते ॥४०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सभी तरह के पाद त्राण तज, नग्न पाद से ही चलते,
चलते-चलते थक जाते पर, निज पद में तत्पर रहते।
कंकर, कंटक चुभते-चुभते, लहुलुहान पद लोहित हो,
किन्तु यही आश्चर्य रहा है, मुनि का मन ना लोहित हो ॥४१॥

कोमल-कोमल लाल-लालतर, युगल पादतल कमल बने,
अविरल, अविकल चलते-चलते, सने रुधिर में तरल बने।
मन में ला सुकुमार कथा को, अशुचि काय में मत रचना,
मार मार कर महा बनो तुम, यह कहती रसमय रचना ॥४२॥

बोधयान पर बैठ, कर रहे, यात्रा यतिवर यात्री हैं,
त्याग चुके हैं, भूल चुके हैं, रथवाहन, करपात्री हैं।
पथ पर चलते तन को केवल, देख रहे पथ दर्शाते,
सदा रहें जयवन्त सन्त वे, नमूँ उन्हें मन हर्षाते ॥४३॥

आत्मबोध से पूज्य साधु ने, चंचल मन को अचल किया,
मोह लहर भी शान्त हुई है, मानस सरवर अमल जिया।
बहुविध दृढ़तम आसन से ही, तन को संयत बना लिया,
जीव दया का पालन फलतः, किस विध होता जना दिया ॥४४॥

संयम बाधक चरित मोह को, पूर्ण मिटाने लक्ष बना,
बिना आलसी बने निजी को, पूज्य बनाने दक्ष बना।
सरिता, सागर, सरवर तट पर, दृढ़तम आसन लगा दिया,
त्याग वासना, उपासनारत, 'ऋषि की जय' तम भगा दिया ॥४५॥

आसन परिषह का यह निश्चित, अनुपम अद्‌भुत सुफल रहा,
हुए, हो रहे, होंगे जिनवर, इस बिन, सब तप विफल रहा।
बुधजन, मुनिजन से पूजित जिन!, अहोरात तव मत गाता,
अतः आज भी भविकजनों ने, धारा उसको नत माथा ॥४६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भय लगता है यदि तुझको अब विषयी जन में प्रमुख हुआ,
यह सुन ले तू चिर से शुचितम निज अनुभव से विमुख हुआ।
दृढ़तम आसन लगा आप में होता अन्तर्धान वही,
ऋषिवर भी आ उन चरणों में नमन करें गुणगान यही ॥४७॥

श्रुतावलोकन आलोड़न से मुनि का मन जब थक जाता,
खरतर द्वादशविध तप तपते साथी तन भी रुक जाता।
आगम के अनुसार निशा में शयन करे श्रम दूर करे,
फलतः हे जिन! तव सम अतिशय पावे सुख भरपूर खरे ॥४८॥

भू पर अथवा कठिन शिला पर काष्ठ फलक पर या तृण पे,
शयन रात में अधिक याम तक, दिन में नहिं, संयम तन पे।
ब्रह्मचर्य व्रत सुदृढ़ बनाने यथाशक्ति यह व्रत धरना,
जितनिद्रक हो हितचिन्तक हो अतिनिद्रा मुनि मत करना ॥४९॥

मुनि पर यदि उपसर्ग कष्ट हो हृदय शून्य उन मानव से,
धर्म-भाव से रहित, सहित हैं वैर-भाव से दानव से।
किन्तु कभी वे निशि में उठकर गमन करें अन्यत्र नहीं,
अहो अचल दृढ़ हृदय उन्हीं का दर्शन वह सर्वत्र नहीं ॥५०॥

सप्तभयों से रहित हुआ है जितनिद्रक है श्रमण बना,
शय्या परिषह वही जीतता दमनपना पा शमनपना।
निद्राविजयी बनना यदि है इच्छित भोजन त्याग करो,
इन्द्रियविजयी बनो प्रथम तुम रसतज निज में राग करो ॥५१॥

यथासमय जो शयन परीषह तन रति तजकर सहता है,
निद्रा को ही निद्रा आवे मुनि मन जागृत रहता है।
समुचित है यह प्रमाद तज रवि उदयाचल पर उग आता,
पता नहीं कब कहाँ भागकर उडुदल गुप लुपछुप जाता ॥५२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

असभ्य पापी निर्दय जन वे करते हों उपहास कभी,
किन्तु न होता मुनि के मन की उज्ज्वलता का नाश कभी।
तुष्ट न होते समता-धारक सुधीजनों के वन्दन से,
रुष्ट न होते शिष्ट साधुजन कुधीजनों के निन्दन से ॥५३॥

क्रोध जनक हैं कठोर, कर्कश, कर्ण कटुक कुछ वचन मिले,
विहार वेला में सुनने को अपने पथ पर श्रमण चले।
सुनते भी पर बधिर हुए-से आनाकानी कर जाते,
सहते हैं आक्रोश परीषह अबल, सबल होकर भाते ॥५४॥

इन्द्रियगण से रहित रहा हूँ, मल से रस से रहित रहा,
रहा इसी से पृथक् वचन से, चेतन बल से सहित रहा।
निन्दन से फिर हानि नहीं है, विचार करता इस विध है,
प्रहार करता जड़विधि पे मुनि, निहारता निज बहुविध है ॥५५॥

सही मार्ग से भटक चुके हैं चलते-चलते त्रस्त हुए,
भील, लुटेरों, मतिमन्दों से घिरे हुए दुखग्रस्त हुए।
उनका न प्रतीकार तथापि करते यति जयवन्त रहे,
समता के हैं धनी-गुणी हैं पापों से भयवन्त रहे ॥५६॥

मोह-भाव से किया हुआ था, पाप पाक यह उदित हुआ,
पर का यह अपराध नहीं है, उपादान खुद घटित हुआ।
पर का इसमें हाथ रहा हो, निमित्त वह व्यवहार रहा,
अविरति-हन्ता नियमनियन्ता, कहते जिनमतसार रहा ॥५७॥

काया लाली रही उषा की, अशुचिराशि है लहर रही,
भवदुखकारण, कारण भ्रम का, शरण नहीं है जहर रही।
इसका यदि वध हो तो हो, पर इससे मेरा नाश कहाँ?
बोध-धाम हूँ चरण सदन हूँ, दर्शन का अवकाश यहाँ ॥५८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

बहुविध विधि का संवर होने में हित निश्चित निहित रहा,
पापास्त्रव में कारण होता शिवपथ में वह अहित रहा।
अन्ध मन्दमति! वधक नहीं ये बाह्यरूप में साधक हैं,
पाप पुण्य के भेद जानते कहते मुनिगण-चालक हैं ॥५९॥

अशन वसतिकादिक की ऋषिगण नहीं याचना करते हैं,
तथा कभी भी दीन-हीन बन नहीं पारणा करते हैं।
निजाधीनता फलतः निश्चित लुटती है यह अनुभव है,
पराधीनता किसे इष्ट है वही पराभव, भव-भव है ॥६०॥

निज पद गौरव तज यदि यति हो मनो-याचना करते हैं,
दर्पण सम उज्ज्वल निज पद को पूर्ण कालिमा करते हैं।
शुचितम शशि भी योग केतु का पाकर ही वह शाम बने,
यही सोचकर साधु सदा ये निज में ही अविराम तने ॥६१॥

बिना याचना, कर्म उदय से यह घटना निश्चित घटती,
कभी सफलता, कभी विफलता भेद-भाव बिन बस बटती।
इसीलिए मत याचक बनना भूल कभी बन भ्रान्त नहीं,
याचक बनता नहीं जानता कर्मों का सिद्धान्त सही ॥६२॥

यांचा परिषह विजयी वह मुनि-समाज में मुनिराज बने,
स्वाभिमान से मंडित जिस विध हो वन में मृगराज तने।
यांचा विरहित यदि ना बनता, जीवन का उपहास हुआ,
विरत हुआ पर बुध कहते वह, गुरुता का सब नाश हुआ ॥६३॥

अनियत विहार करता फिर भी, निर्बल सा ना दीन बने,
तथा किया उपवास तथापि, परवश ना! स्वाधीन बने।
भोजन पाने चर्या करता, पर भोजन यदि नहिं मिलता,
विषाद करता नहिं पर, भोजन मिला हुआ-सा मुख खिलता ॥६४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

इष्ट मिष्ट रस-पूरित भोजन, मिलने पर हो मुदित नहीं,
अनिष्ट नीरस मिलने पर भी, दुखित नहीं हो क्रुधित नहीं।
सहित रहा संवेग भाव से, सर्व रसों से विरत बना,
चिंतन करता यह सब विधिफल, साधु गुणों से भरित बना ॥६५॥

करते श्रुतमय सुधापान हैं, द्वादशविध तप अशन दमी,
दमन कर रहे इन्द्रिय तन का, कषायदल का शमन शमी।
केवल दिखते बाहर से ही, क्षीणकाय हो दुखित रहे,
भीतर से संगीत सुन रहे, जीत निजी को सुखित रहे ॥६६॥

जनन जरा औ मरण रोग से श्वास-श्वास पर डरता है,
जिसके चरणों में आकर के नमन विज्ञ दल करता है।
दुष्कृत फल है दुस्सह भी है महा भयानक रोग हुआ,
प्रभु पदरत मुनि नहिं डरता है धरता शुचि उपयोग हुआ ॥६७॥

सभी तरह के रोगों से जो मुक्त हुए हैं बता रहे,
कर्मों के ये फल हैं सारे, खारे जग को सता रहे।
रोगों का ही मन्दिर तन है अन्दर कितने पता नहीं,
उदय रोग का, कर्म मिटाता ज्ञानी को कुछ व्यथा नहीं ॥६८॥

सुगन्ध चन्दन तैलादिक से तन का कुछ संस्कार नहीं,
वसनाभूषण आभरणों से किसी तरह शृंगार नहीं।
फिर भी तन में रोग उगा हो पाप कर्म का उदय हुआ,
उसे मिटाने प्रासुक औषध मुनि ले सकता सदय हुआ ॥६९॥

रोग परीषह प्रसन्न मन से जो मुनि सहता ध्रुव ज्ञाता,
सुचिरकाल तक सुरसुख पाता अमिट अमित फिर शिव पाता।
अधिक कथन से नहीं प्रयोजन मरण भीति का नाश करो,
सादर परिषह सदा सहो बस! निजी नीति में वास करो ॥७०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तृण कंटक पद में वह पीड़ा सतत दे रहे दुखकर हैं,
गति में अंतर तभी आ रहा रुक-रुक चलते मुनिवर हैं।
उस दुस्सह वेदन को सहते-सहते रहते शान्त सदा,
उसी भाँति मैं सहूँ परीषह शक्ति मिले, शिव शान्ति सुधा ॥७१॥

खुले खिले हों डाल-डाल पर फूल यथा वे हँसते हैं,
जिनकी पराग पीते अलि-दल चुम्बन लेते लसते हैं।
विषम, विषमतर शूल तृणों से आहत हैं पर तत्पर हैं,
निज कार्यों में बिना विफल हो कहते हमसे तन पर है ॥७२॥

कठिन-कठिनतर शयनासन में कंटक पथ पर विचरण में,
सुख ही सुख अवलोकित होता मुनियों के आचरणन में।
भीतर से बाहर आने को शम सुख सागर मचल रहा,
दुखित जगत को सुखित बनाने यतन चल रहा सकल रहा ॥७३॥

कभी-कभी आकुलता यदि हो मन में तन में वेदन हो,
प्रतिफल हो, फल कर्मचेतना चेतन में पर खेद न हो।
बिना वेदना प्रथम दशा में कर्मों का वह क्षरण नहीं,
समयसार का गीत रहा यह औ सब बाधक शरण नहीं ॥७४॥

निज भावों से भावित भाता भासुर गुणगण शाला है,
परिमल पावन पदार्थ प्यारा अनुभवता रस प्याला है।
फिर यह तन तो स्वभाव से ही मल है मल से प्यार वृथा,
मुनियों से जो वंदित है सुन! शुद्ध-वस्तु की सार कथा ॥७५॥

स्वभाव से ही रहा घृणास्पद रहा अचेतन यह तन है,
पल से मल से भरा हुआ है क्यों फिर इसमें चेतन है?
तन से निशिदिन झरती रहती अशुचि, सुनो जिनश्रुति गाती,
देह राग से श्रमणों की वह विराग छवि ही क्षति पाती ॥७६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तपन-ताप से तप्त हुआ तन स्वेद कणों से रंजित हो,
रज कण आकर चिपके फलतः स्नान बिना मल संचित हो।
मल परिषह तब साधु सह रहा सुधा पान वे सतत करें,
नीरस तरु सम तन है जिनका हम सब का सब दुरित हरें ॥७७॥

कंचन काया बन सकती है ऋद्धि-सिद्धि से युक्त रहा,
तन का मल मुनि नहीं हटाता मल से तन अतिलिप्त रहा।
चेतन मैं हूँ, चेतन में हूँ यथार्थ मल तो मल में है,
कहता जाता कमल कमल में कहने भर को जल में है ॥७८॥

अविरत जन या व्रती पुरुष यदि अपने से विपरीत बने,
आदर ना दे, करे अनादर यदि बनते अविनीत तने।
किन्तु मुनीश्वर लोकेषण से दूर हुए भवभीत हुए,
विकास विरहित ललाट उनका रहता वे जग मीत हुए ॥७९॥

अमल, समल हैं सकल जीव ये ऊपर, भीतर से प्यारे,
अगणित गुणगण से पूरित सब 'समान' शीतल शुचि सारे।
मैं गुरु तू लघु फिर क्या बचता परिभव-परिषह बुध सहते,
आर्य देव अनिवार्य यही तव मत गहते सुख से रहते ॥८०॥

कभी प्रशंसा करे प्रशंसक विनय समादर यदि करते,
नहीं मान-मद मन में लाते, मन को कलुषित नहिं करते।
प्रत्युत अन्दर घुस कर बैठा मान-कर्म के क्षय करने,
साधु निरंतर जागृत रहते निज को शुचि अतिशय करने ॥८१॥

निरालसी यति समिति गुप्ति में जब हो रत मन शमन करें,
गणधर आदिक महामना भी उनको मन से नमन करें।
मानी मुनिजन नमनादिक यदि नहिं करते मत करने दो,
अर्थ नहीं उसमें, जिन कहते यह परिषह अघ हरने दो ॥८२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जिन श्रुत में हैं पूर्ण विशारद सम्मानित हैं बुधगण में,
भाग्य मानकर सदा शारदा रहती जिनके आनन में।
मानहीन हैं, स्वार्थहीन हैं दुखी जगत को अमृत पिला,
परमत तारकदल में शीतलशशि हैं यश की अमिट शिला ॥८३॥

अन्तराय का अन्त नहीं हो अतुल अमिट बल मुदित नहीं,
जब तक तुममें अनन्त अक्षय पूर्ण ज्ञान हो उदित नहीं।
ज्ञान क्षेत्र में तब तक निज को लघुतम ही स्वीकार करो,
तन-मन-वच से ज्ञान-मान का प्रतिपल तुम धिक्कार करो ॥८४॥

अवलोकन-अवलोड़न करते जिनश्रुत के अनुवादक हैं,
वादीजन को स्याद्वाद से जीते पथ प्रतिपादक हैं।
ज्ञान परीषह सहते मुख से कभी न कहते हम ज्ञानी,
ज्ञान कहाँ है तुममें इतना महा अधम हो अज्ञानी ॥८५॥

नम्र भाव से ज्ञान परीषह जीत-जी रहे मतिवर हैं,
तत्त्व ज्ञान से मत्त चित्त को किया नियंत्रित यतिवर हैं।
प्रभु पद में रत हुए मुझे भी होने सन्मति दान करें,
निलयगुणों के जय हो गुरु की मम गति का अवसान करें ॥८६॥

सहो सदा अज्ञान परीषह नियोग है यह शिव मिलता,
अल्पज्ञान पर्याप्त रहा यदि निज अनुभवता भव टलता।
बहुत दिनों का पड़ा हुआ है सुमेरु सम तृण ढेर रहा,
एक अनल की कणिका से बस! जल मिटता, क्षण देर रहा ॥८७॥

सत्पथ चलता महाव्रती हो प्रचुर समय वह बीत गया,
इन्द्रिय योगों को वश करके गाता आतम गीत जिया।
किन्तु अभी तक जगी न मुझमें बोध भानु की किरण कहीं,
यूँ न सोचता, मुनिवर तजता समता की वह शरण नहीं ॥८८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

महा मूढ़ है, साधु बना है, शुभकृत जीवन किया नहीं,
भविकजनों को सदुपदेश दे उपकृत अब तक किया नहीं।
महा मलिन मति चिर से तेरी ज्ञान-नीर से धुली नहीं,
सहे वचन यूँ व्यर्थ साधुता अभी आँख तव खुली नहीं ॥८९॥

बच करके अशुभोपयोग से जब शुभ शुचि उपयोग धरूँ,
अक्षय सुख देने वाले मुनि-गुण-गण का उपभोग करूँ।
किस विध फिर मैं हो सकता हूँ कुधी, कभी नहिं हो सकता,
सहता यूँ अज्ञान परीषह मन का मल वह धो सकता ॥९०॥

ज्ञानावरणादिक से चिर से भला-बोध बल मलिन वही,
सहने से अज्ञान परीषह निश्चित होता विमल सही।
उड़-उड़कर आ रज-कण चिपके धूमिल फलतः दर्पण हो,
जल से शुचि हो जिनमत गाता इसे सदा नति अर्पण हो ॥९१॥

चिर से दीक्षित हुआ अभी तक, ऋद्धि नहीं कुछ सिद्धि नहीं,
तथा गुणों में ज्ञानादिक में लेश मात्र भी वृद्धि नहीं।
ऐसा मन में विचार कर मुनि उदासता का दास नहीं,
होकर परवश कभी त्यागता जिनमत का विश्वास नहीं ॥९२॥

जिन शासन से शासित होकर व्रत पालूँ अविराम सही,
किन्तु हुआ ना ख्यात जगत में यश फैला ना नाम कहीं।
रहित रहा हो अतिशय गुण से जिन दर्शन यह लगता है,
समदर्शन युत मुनि मन में ना ऐसा संशय जगता है ॥९३॥

अल्प मात्र भी ऐहिक सुख औ इन्द्रिय सुख वह मिला नहीं,
फिर, किस विध निर्वाण अमित सुख मुझे मिलेगा भला कहीं।
मुनि हो ऐसा कहता नहिं जिन-मत का गौरव नहिं खोता,
रहा अदर्शन यही परीषह-विजयी होता सुख-जोता॥९४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जिन मत की उन्नति में जिनका जीवन तत्पर लसता है,
उजल सलिल से भरा सरित-सा जिन में दर्शन हँसता है।
रहा अदर्शन परिषहजय यह प्रमुख रहा मुनि यतियों का,
उनके चरणों में नित नत हूँ विनशन हो चहुँगतियों का ॥९५॥

पद-पूजन संपद संविद पा पद-पद होते सुखित नहीं,
निन्दन, आपद, अपयश में फिर साधु कभी हो दुखित नहीं।
दुस्सह सब परिषह सहने में सक्षम ऋषिवर धीर सभी,
आत्म ध्यान के पात्र, ध्यान कर पाते हैं भव तीर तभी ॥९६॥

दुष्कर तप से नहीं प्रयोजन संयम से यदि रहित रहा,
परिषहजय बिन नहीं सफलता यद्यपि व्रत से सहित रहा।
यम-दम-शम-सम सकल व्यर्थ हैं समदर्शन यदि ना होता,
पाप पंक से लिपा कलंकित जीवन मौलिक नहिं, थोथा ॥९७॥

शीत परीषह, उष्ण परीषह एक समय में कभी न हों,
चर्य्या, शय्या तथा निषद्या एक साथ ये सभी न हों।
ऐसा जिनवर का आगम है हम सबको यह बता रहा,
अनुभव कहता, स्ववश परीषह सहो सही, फिर व्यथा कहाँ ॥९८॥

एक साथ उन्नीस परीषह मुनि जीवन में हो सकते,
समता से यदि सहो साधु हो विधिमल पल में धो सकते।
सन्त साधुओं तीर्थकरों ने सहे परीषह सिद्ध हुए,
सहूँ निरन्तर उन्नत तप हो समझूँ निज गुण शुद्ध हुए ॥९९॥

पुण्य-पाक है सुरपद संपद सुख की मन में आस नहीं,
आतम का नित अवलोकन हो दीर्घ काल से प्यास रही।
तन से, मन से और वचन से तजूँ अविद्या हाला है,
'ज्ञान-सिन्धु' को मथकर पीऊँ समरस 'विद्या', प्याला है ॥१००॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सुनीतिशतक

(ज्ञानोदय छन्द)

चिन्मय-धन के धनिक रहे हैं, शिवसुख के जो जनक बने।
विरागता के सदन जिन्हें हो, नमन सदा यह कनक बने॥
लिखी गई यह अल्प ज्ञान से, नीतिशतक की रचना है।
रोग शोक ना रहे धरा पर, ध्येय पाप से बचना है ॥१॥

नया वस्त्र हो मूल्यवान हो, मल से यदि वह समल रहा।
प्रथम बार तो छू नहिं सकता जल को, जल हो विमल अहा॥
उपदेशामृत सन्तों से सुन, करता आना कानी है।
शास्त्रों का व्यवसाय चल रहा जिसका, बुध जो मानी है ॥२॥

शिवसुखकारक भवदुखहारक मुनि का मुनिपन विमल घना।
देहाश्रित कुल-जात पात से सुनो! कभी ना समल बना॥
यही समझ में सब को आता कृष्ण-वर्ण की गायें हों।
किन्तु दूध क्या? काला होता दूध धवल ही पायें ओ!॥३॥

यद्यपि वय से वृद्ध हुए हैं संयम से अति ऊब रहे।
विषयरसिक हैं विरति विमुख हैं विषयों में अति डूब रहे॥
उनकी संगति से शुचिचारित मुनियों का वह समल बने।
वृद्ध-साथ हो युवा चले यदि युवा चरण भी विकल बने ॥४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ज्ञानवृद्ध औ तपोवृद्ध यदि पक्षपात से सहित तना।
उभय लोक में सुख से वंचित निज पर का वह अहित बना॥
सज्जन पीते पेय रहा है पावन पय का प्याला है।
छोटी सी भी लवण-डली यदि गिरती, फिर क्या? हाला है॥५॥

पाप पंक में फंसे हुए हैं, विषय-राग को सुख जाने।
मोह पाश से कसे हुए हैं वीतराग को दुख माने॥
सत्य रहा यह, कर्म-योग से जिनको होता रोग यहाँ।
पथ्य कहाँ वह रुचता उनको अपथ्य रुचता भोग महा॥६॥

मानभूत के वशीभूत हो धनिक दान खुद करते हैं।
मान तथा धन की आशा से ज्ञान-दान बुध करते हैं॥
प्रायः ऐसा प्रभाव प्रचलित कलियुग का है विदित रहे।
वीतराग-मय पूज्य धर्म से इसीलिए ये स्खलित रहे॥७॥

काल रूप ले लोभ अनल वह जीवन में जब खिलता है।
सुधी जनों का व्रती जनों का अपनापन ही जलता है॥
भीतर में नहिं भले बाह्य में भेष-गात्र वह भार रहो।
निगला गज ने केंथ निकलता शेष मात्र बस बाहर ओ॥८॥

भव भव में नव तन का कारण यही परिग्रह माना है।
वैर-कलह का जनक रहा है यही परिग्रह बाना है॥
यही परिग्रह राजमार्ग है जिस पर शनि का विचरण हो।
अतः परिग्रह तजता यह मुनि जिससे इसका सुमरण हो ॥९॥

साक्षर होकर जीवन जिसका मोहादिक से शोभित है।
ज्ञान, ज्ञानपन से वंचित है संयम से नहिं शोधित है॥
शूकर के केशों को देखो कहाँ ललित है जटिल कहाँ?
स्पर्शनीय या दर्शनीय या कोमल-कोमल कुटिल कहाँ? ॥१०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पाप पंक में पतित हुआ हो साधु समागम यदि पाता।
प्रथम पुण्य से भव वैभव पा मुक्ति समागम पुनि पाता॥
मिश्री का यदि सुयोग पाता खट्टी हो वह यदपि दही।
इष्ट मिष्ट श्रीखण्ड बनेगा, मूढ़ चाहता तदपि नहीं ॥११॥

जग के जड़ जंगम जीवों का काय व्याधि का मन्दिर है।
दुस्सह दुख का मूल हेतु है चित्त आधि का मन्दिर है॥
साधु जनों का किन्तु काय वह अचलराज है, मन्दर है।
निज-पर सुख का कारण मन है जीवित शिव का मन्दिर है ॥१२॥

केवल ज्ञानावरणादिक जड़ कर्मों का जब उदय रहा।
पूर्ण ज्ञान का उदय नहीं हो अनन्त सुख का निलय रहा॥
विशाल नभ मण्डल में जैसा उदित प्रभाकर लोहित हो।
तारक दल वह लुप्त-गुप्त हो शशि भी शीघ्र तिरोहित हो॥१३॥

गृहस्थ जब तक गृह में रहता विरागता का श्वास नहीं।
जैसा जीवन अनुभव वैसा सरागता का वास वहीं॥
सूखी लकड़ी जलती जिससे धूम्र नहीं वह उठता है।
गीली लकड़ी मन्द जलेगी धूम्र उठे, दम घुटता है ॥१४॥

मुनियों को अध्यात्म शास्त्र वह प्रायः परमामृत प्याला।
विषयरसिक हैं गृही जनों को विषम-विषमतम है हाला॥
जीवन-दाता प्राण-प्रदाता नीर मीन को माना है।
औरों को तो मृत्यु रहा है यही योग्यता बाना है ॥१५॥

तन से रीते शिव जिन जीते उनमें संभव हो भव ना।
स्वभावदर्शन विभावघर्षण तन-धारक में संभव ना॥
कहाँ दूध से प्रकाश मिलता तथा दूध में गन्ध कहाँ?
प्रकाश देता तथा महकता घृत से जल का बंध कहाँ? ॥१६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भोग और उपभोगों से तो विरत रहे हों मानी हो।
योग और उपयोगों में जो निरत रहे परमाणी हों॥
नासा पर फिर दृष्टि रही क्यों? ऐसा यदि भगवान नहीं,
मान बिना यह परिणति ना हो मेरा यह अनुमान सही ॥१७॥

जीव पुण्य का उदय प्राप्तकर नर जीवन को पाकर भी।
सुखद चरित ना दुखद असंयम प्रायः पाले पामर ही॥
उदार उरवाले पर्वत पर मुड़कर भी नहिं हँसती है।
खारा सागर रहा कृपण है सरिता जिस में फँसती है ॥१८॥

दृष्टि रहित हो घोर घोरतर तप तपता उस तापस में।
श्रीमन्तों में धीमन्तों में तथा असंयत मानस में॥
अनायास ही होता रहता मद जिससे बहु दोष पले।
निशाकाल में निद्रा जैसी प्रायः आती होश टले ॥१९॥

लाल तिलक बिन ललना जनका ललाटतल ना ललित रहे।
उद्यम के बिन तथा जगत में देश ख्यात ना दलित रहे॥
परम शान्त रस बिना किसे वह भाती कवि की कविता है।
सम दर्शन के बिना कभी ना भाती मुनि की मुनिता है ॥२०॥

जीर्ण-शीर्ण तन कान्तिहीन है पर भव भी अब निकट रहा।
मोही का पर विषयों पर ही झपट रहा मन निपट रहा॥
बहुत पुराना इमली का वह रहा वृक्ष अतिवृद्ध रहा।
किन्तु खटाई इमली की नहिं वृद्धा यह अविरुद्ध रहा ॥२१॥

एक रहा शृंगार रसों में रस में डूबे रहते हैं।
तत्त्वज्ञान से विमुख रहे जो इस विध कुछ कवि कहते हैं॥
किन्तु सुनो! अध्यात्म शृंग तक पहुँचाता रस सार रहा।
परम-शान्त रस कवियों का वह सुखकर है शृंगार रहा ॥२२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नारायण प्रतिनारायण औ तीर्थंकर बलदेव धनी।
महापुरुष वे महामना वे कहाँ गये जिनदेव गणी?॥
काल-गाल में कवल हुए सब विस्मृत मृत हैं आज नहीं।
हम सम साधारण जन की क्या? कथा रही यह लाज रही ॥२३॥

गृही बना पर उद्यम बिन हो धन से वंचित यदि रहता।
श्रमण बना श्रामण्य रहित हो धन में रंजित यदि रहता॥
ईख-पुष्प आकाश-पुष्पसम इनका जीवन व्यर्थ रहा।
सही-सही पुरुषार्थ वन्द्य है जिस बिन सब दुखगर्त रहा ॥२४॥

तत्त्व-बोध को प्राप्त हुए पर धन से यश से यदि रीते।
प्रायः मानव धनी जनों की हाँ में हाँ भर कर जीते॥
श्वान चाहता सुखमय जीवन जग में सात्त्विक नामी हो।
पीछे-पीछे पूँछ हिलाता स्वामी के अनुगामी हो ॥२५॥

मोक्षमार्ग में विचरण करता श्रमण बना है नगन रहा।
किन्तु परिग्रह यदि रखता है अणुभर भी सो विघन रहा॥
पवन वेग से मयूर का वह पुच्छ-भार जब ताड़ित हो।
मयूर समुचित चल ना सकता विचलित पद हो बाधित हो ॥२६॥

बात संग की कहें कहाँ तक सुनो! संग तो संग रहा।
संघ-भार भी अन्त समय में संग रहा सुन दंग रहा॥
वस्त्राभरणाभूषण सारे बोझिल हो मणिहार तथा।
वृद्धावस्था में तो कोमल-मलमल भी अतिभार व्यथा ॥२७॥

सुख चाहें उन शिष्यों के प्रति कठोरतर व्यवहार करें।
कभी-कभी गुरु रुष्ट हुए से वचनों का व्यापार करें॥
किन्तु हृदय से सदा सदय हो मार्दवतम हो लघुतम हो।
जैसा श्रीफल कठोर बाहर भीतर उज्ज्वल मृदुतम हो॥२८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पापात्मा का आश्रय पाकर सन्त वचन भी पाप बने।
पुण्यात्मा का आश्रय पाकर पुण्य बने भवताप हने॥
नभ से गिरती जल की धारा! इक्षु-दण्ड में मधुर सुधा।
कटुक नीम में अहि में विष हो अब तो मन तू सुधर मुधा ॥२९॥

अहंकार की परिणति से मैं पूर्ण रूप से विरत रहूँ।
तथा काय की ममता तजकर समता में नित निरत रहूँ॥
यही नियति है बार-बार फिर तन का धारण नहीं बने।
कारण मिटता कार्य मिटेगा प्राण विदारण नहीं बने ॥३०॥

प्रयास पूरा भले करो तुम पाप पाप से नहिं मिटता।
पाप पुण्य से पल में मिटता पुरुष पूत हो सुख मिलता॥
मल से लथपथ हुआ वस्त्र हो मल से कब वह धुल सकता?
विमल सलिल से धोलो पल में, मूल रूप से धुल सकता ॥३१॥

सब सारों का सार रहा है चेतन निधि को त्याग जिया।
रहा अचेतन दुख का केतन जड़ वैभव में राग किया॥
कौन रहा वह बुद्धिमान हो सारभूत नवनीत तजे।
क्षारभूत रसरीत छाछ में भूल कभी क्या? प्रीत सजे ॥३२॥

धन के अर्जन संवर्धन औ संरक्षण में लीन रहा।
बार-बार मर दुखी हुआ पर आत्मिक सुख से हीन रहा॥
मोह मल्ल की महा शक्ति है उसे जगत कब जान रहा।
पूँछ उलझती झाड़ी में है चमरी खोती जान अहा ॥३३॥

जीवन को, जीवित रख सकती प्रजापाल के बिना प्रजा।
प्रजापाल पर कहाँ रहे ओ! कहाँ सुखी हो बिना प्रजा॥
निश्चित ही पर-आश्रित है वह स्वयं भला क्या सिन्धु रहा?
किन्तु बिन्दु निज आश्रित है यह सिन्धु हेतु है बिन्दु रहा ॥३४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भोगी बन कर भोग भोगना भव बन्धन का हेतु रहा।
योगी बन कर योग साधना भव-सागर का सेतु रहा॥
जैसा तुम बोओगे वैसा बीज फलेगा अहो! सखे।
निम्ब वृक्ष पर सरस आम्रफल कभी लगे क्या? कहो सखे!॥३५॥

मोह भाव से दूर हुआ है, साधु परिग्रह त्याग रहा।
समता से भरपूर हुआ है उसे कष्ट नहिं जाग रहा॥
चिकनाहट से रहित हुआ है पात पका है पलित हुआ।
सहज रूप से बाधा बिन ही पादप से वह पतित हुआ ॥३६॥

विषयी का बस विषयराग ही भवदुख का वह कारण है।
भविकजनों का धरम राग ही शिवकारण दुखवारण है॥
सन्ध्या में भी लाली होती प्रभात में भी लाली है।
एक सुलाती एक जगाती कितने अन्तर वाली है ॥३७॥

वैसा वानर चंचल होता मदिरा पीता पामर है।
बिच्छू ने फिर उसको काटा और हुआ वह पागल है॥
उससे भी मानव मन की अति चंचलता मानी जाती।
धन्य रहा वह विजितमना जो जिनवर की वाणी गाती ॥३८॥

पंचेन्द्रिय के विषयों में जो प्रतीति सुख की होती है।
मोह-भाव की परिणति है वह स्वरीति सुख की खोती है॥
जल का मन्थन करने वाला पाता नहिं नवनीत कभी।
किन्तु फेन का दर्शन पाता मति होती विपरीत तभी ॥३९॥

वीतरागमय जिनवर का वह जिसके मन में स्मरण हुआ।
ज्ञात रहे यह बात, उसी के पाप बाप का मरण हुआ॥
सावन में सरवर सरिता का मलिन रहे वह सलिल भले।
अगस्त्य का जब उदय हुआ बस! विमल बने जल ,कलिल टले ॥४०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

किसी पुरुष के दोष कभी भी होश बिना जो किए गये।
अनायास ही सुधीजनों से सुने गये हो लखे गये॥
तन मन वच से कहें न पर को जग में वे जयवन्त रहें।
सदा दया के निलय बने जो शान्तमना हैं सन्त रहें ॥४१॥

महा भयानक दुस्सह दुखमय-भवसागर के पार गहें।
स्वभाव तज कर विभाव-भव में जिनवर नहिं अवतार गहें॥
तेल निकलता है तिल से, घृत तथा दूध से वह निकले।
किन्तु तेल तिल में नहिं बदले, नहीं दूध में घृत बदले ॥४२॥

लुब्ध हुआ है विषयों में अति मुग्ध कुधी वृषरीत रहे।
ज्ञानी की तुम बात पूछते जग से वह विपरीत रहे॥
बालक को जब मोदक मिलता खाता खाता नृत्य करे।
किन्तु वृद्ध वह यद्यपि खाता नृत्य करे ना तथ्य अरे ! ॥४३॥

नग्न दिगम्बर तन से होना केवल यह पर्याप्त नहीं।
किन्तु विमलता साथ रहे वह मन की, कहते आप्त सही॥
ऐसा यदि ना, श्वान सिंह पशु नग्न सदा हैं सुखित बनें।
किन्तु कहाँ? वे सुखित बने हैं रहें निरन्तर दुखित घने ॥४४॥

परम शान्त निज आतम में यदि जा बसने की चाह रही।
भक्ति-भाव से भजो सरलता तजो कुटिलता 'राह-यही॥
कुटिल-चाल से चलता है अहि बाहर में यह उचित रहा।
बिल में प्रवेश जब करता है 'सरल चाल हो, विदित रहा ॥४५॥

हो सकता है जलधि तृप्त वह शत-शत सरिता नदियन से।
तथा जहर भी सुधा सरस हो अनल तृप्त हो ईन्धन से॥
पंगू भी वह दैवयोग से गिरि चढ़ सकता संभव है।
किन्तु तृप्ति लोभी की धन से कभी न होना सम्भव है ॥४६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

रहा मनोबल मुक्ति-मार्ग में साधकतम है गुरु तम है।
तथा वचन बल तरतमता से आवश्यक है कुछ कम है॥
तन बल तो बस रहा सहायक निश्चय के वह साथ सही।
किन्तु सुनो! तुम मुक्तिमार्ग में धनबल का कुछ हाथ नहीं ॥४७॥

पापार्जन तन मन वच से हो पाप तनक ही तन से हो।
विदित रहे यह सब को, तनसे पाप अधिक वाचन से हो॥
कहूँ कहाँ तक मन की स्थिति मैं पाप मेरु सम मन से हो।
करें नियंत्रण मन का हम सब धर्म कार्य बस! मन से हो ॥४८॥

दान धर्म में रत होने से शोभा पाता वह भोगी।
ध्यान कर्म में रत होने से शोभा पाता यह योगी॥
पात्र बना है निरीह बनना गुण माना है जिनवर ने।
नरक द्वार है इच्छा-ज्वाला हमें कहा है ऋषिवर ने ॥४९॥

कृषक कृषी का कार्य करे वह ध्येय धान्य का लाभ रहा।
किन्तु घास का ध्येय रहा तो हास्य पात्र वह आप रहा॥
संग सहित-सागारी हो या संग रहित-अनगारी हो।
भवक्षय करने धर्मनिरत हो शिवसुख के अधिकारी हो ॥५०॥

यथाशक्ति औ तथाभक्ति से दान पात्र को दे दाता।
फल के प्रति यदि किसी तरह भी मन में लालच नहिं लाता॥
वही रहा है प्रशस्त दाता, बुध-मत हमको बतलाता।
कीर्ति फैलती जग में उसकी सुख पाता शाश्वत साता ॥५१॥

सही दान बस वही कहाता विनय-भाव से घुला हुआ।
दाता पूजित बुध जन से हो नम्र-भाव में ढला हुआ॥
दुग्ध पान करके भी बालक तुरत वमन वह कर लेता।
मानवती माता के मुख को मुड़कर भी नहिं लख देता ॥५२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चिन्ताओं से घिरा रहेगा आजीवन दिन रैन वही।
दो दो नारी जिसकी होती गृही जिसे सुख-चैन नहीं।
लगभग वैसा गुरु संयत भी चिंतित रहता खेद रहा।
जिसके शिष्यों में आपस में वैर भाव मन-भेद रहा ॥५३॥

महाव्रतों में महा रहा है मुनियों का व्रत शील रहा।
इन्द्रियविषयों में रसना का विजय मुख्य सुखझील रहा॥
सब दानों में अभय-दान ही श्रेष्ठ रहा वरदान रहा।
सब धर्मों में धर्म-अहिंसा मान्य रहा मन मान रहा ॥५४॥

प्रशस्त ध्यानों में सुखदाता शुक्ल-ध्यान वह श्रेष्ठ रहा।
प्रधान तप में ध्यान रहा निज-निधि का निधान जेष्ठ रहा॥
सभी रसों में मधुर त्याग ही प्रथम रहा बुध श्लाघ्य रहा।
विज्ञ कहें बस यही साध्य है मुनियों का आराध्य रहा ॥५५॥

प्रमाण के अनुचर हो चलते जिनशासन के नय सारे।
भिन्न स्वभावी रहें परस्पर किन्तु लड़ें नहीं दृग-धारें॥
भले नदी के एक कूल को अन्य कूल प्रतिकूल रहे।
किन्तु नदी को कुल दोनों मिल कूल सदा अनुकूल रहे ॥५६॥

मूढ़ सुनो तुम तन धारण ही दुस्सह दुख का मूल रहा।
सब दुःखों में दुःख वही है मन को जो प्रतिकूल रहा॥
उसमें भी है महा भयानक दुःख पराभव का होता।
आत्मबोध हो फिर क्या दुख है अभाव भव-भव का होता ॥५७॥

बाहर से तो छोड़ दिया है धन मणि कंचन सकल अहा।
किन्तु उन्हीं में जाकर जिसका मन रमने को मचल रहा॥
शिवसुख उसको मिल नहिं सकता उसे तत्त्व क्या? खबर नहीं।
सर्प कांचली भले छोड़ता किन्तु छोड़ता जहर नहीं ॥५८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सभी सुखों में आत्मिक सुख ही उत्तम है श्रुति गाती है।
सब गतियों में पंचम गति ही उत्तम मानी जाती है॥
सब आभाओं में मणि-आभा मानव मन को भाती है।
सब ज्ञानों में अक्षय केवल-ज्ञान ज्योति सुख लाती है ॥५९॥

जैसी मति होती है वैसी नियम रूप से गति होती।
जैसी गति होती है वैसी सुनो नियम से मति होती॥
अभाव मति का जब होता है गति का अभाव तब होता।
अभाव मति गति का होने से प्रकटित स्वभाव अब होता ॥६०॥

जल बिन कब हो जल में उठतीं लहरें जल के आश्रित हो।
गगन चूमता भवन बना है स्तम्भों पर आधारित हो॥
उत्तम तम गुण ज्ञानादिक भी विनयाश्रित हैं शोभित हैं।
बिना विनय के वृथा सभी गुण इस विध मुनि संबोधित हैं ॥६१॥

शक्ति-शालिनी सेना की भी राजा से ही शोभा है।
मस्तक पर वर मुकुट शोभता राजा की भी शोभा है॥
नहीं शोभता बिना विनय के गुणगण का जो निलय बना।
इसीलिए बस सुधी जनों से पूजा जाता विनय घना ॥६२॥

ज्यों ही इन्द्रिय सचेत होती विषयों का बस ग्रहण हुआ।
कषाय जगती क्रोधाधिक फिर विधि-बन्धन का वरण हुआ॥
विधि बन्धन से गति मिलती है गति से काया मिलती है।
काया में फिर नई इन्द्रियाँ नई खिड़कियाँ खुलती हैं ॥६३॥

फिर क्या पूछो वही-वही फिर चलती रहती चिर से है।
परम्परा है बीज वृक्ष से वृक्ष बीज से फिर से है॥
किन्तु बीज को दग्ध करो तो वृक्ष कहाँ फिर जीयेगा।
जीती, इन्द्रिय यदि तुमने तो शान्ति सुधा चिर पीयेगा ॥६४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जीत इन्द्रियाँ विजितमना है यम संयम ले संयत है।
आत्म-ध्यान में सहज रूप से वही लीन हो संगत है॥
यथा-शीघ्र ही घुल मिल जाती सुनो दूध में शक्कर है।
जीतो इन्द्रिय इसीलिए तुम विषयों का तो चक्कर है ॥६५॥

ज्ञान मात्र से मात्र चरित से मात्र भावना के बल से।
सिद्धि नहीं हो, होती शुचितम ध्यान साधना के बल से॥
समुचित है यह बिना तपाये नहीं दूध से घृत मिलता।
अनल योग पा, तप-तप कर ही कनक खरा भास्वत खिलता ॥६६॥

विशेष औ सामान्य गुणों से सहित वस्तु है शाश्वत है।
प्रभु के दोनों उपयोगों में एक साथ जो भास्वत है॥
फैला-फैला कर पंखों को पंछी नभ में उड़ता ओ।
किन्तु कभी ना दिखा किसी को एक पंख से उड़ता हो ॥६७॥

हित हो अथवा अहित रहा हो निज आतम में निहित रहे।
सन्तों के ये वचन रहे हैं तुम सब को भी विदित रहे॥
पर का इस में हाथ रहा हो निमित्त भर वह कहलाता।
उपादान में फल लगता है सुनो! गीत तुम यह गाता ॥६८॥

ज्ञेय-मूल्य भी ज्ञान बिना नहिं दुख ही सुख का मूल्य रहा।
बन्ध बिना नहिं मुक्ति रुचेगी निर्धन धन का मूल्य रहा॥
कौन पूछता दाता को बिन पात्र, पथिक बिन पन्था को।
गौण हुए बिन मुख्य कौन हो लोचन-मालिक, अन्धा हो ॥६९॥

अज्ञ रहा तब मूल्य विज्ञ का बढ़ा अन्यथा वृथा कथा।
शत्रु मित्र की याद दिलाता क्षुधा बिना है अन्न वृथा॥
उचित रहा यह जहाँ निशा हो तथा दिवस भी रहे वहाँ।
मूल्य निशाकर तथा दिवाकर का होता बुध कहें यहाँ ॥७०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अविवाहित हो जीवन जीता व्यभिचारी भी बना हुआ।
गृही विवाहित उससे वर है शुभ आचारी बना हुआ॥
एक पाप को पल पल ढोता दुर्मति से दुर्गति होती।
एक पाप को नियमित धोता धर्म कार्यरत मति होती ॥७१॥

कृपण सेठ से श्रेष्ठ रहा वह साधारण जीवन जीता।
दयालु दाता पर के दुख का वैरी उद्यम-जल पीता॥
प्रशस्त-दाता किन्तु नहीं जो अनीति-धन का दान करे।
दान बिना भी मान्य रहा वह नीति निपुण गुणवान अरे ! ॥७२॥

श्रद्धा की मम आँखों में प्रभु किसविध आ अवतार लिया।
कणभर होकर मन यह मेरा गुरु तम तुमको धार लिया॥
विराग हो तुम अमूर्त भी हो मूर्त रहा यह अन्य रहा।
धन्य रहे हो भगवन् तुम तो किन्तु भक्त भी धन्य रहा ॥७३॥

महा विचक्षण योग्य शिष्य हो विनयी हो श्रमशील तना।
योग, योग्य गुरु का पा गुरु हो विस्मय क्या समझील बना॥
शिल्पी की वह शिल्पकला है जड़ भी चेतन हो जाता।
कठिन-कठिन पाषाण-खण्ड भी विराग केतन हो जाता ॥७४॥

चमक दमक है जिनके चारों ओर विषय ये परे हुए।
निज में रमते सदा भ्रमर से बुधजन भ्रम से परे हुए॥
किन्तु हिताहित नहीं जानते पर में रत जड़ मरते हैं।
जैसे कफ में मक्खी फँसती क्यों न विषय से डरते हैं? ॥७५॥

भाग्य खुला तो मुख खिलता है प्रायः जग यह मुदित दिखे।
पाप उदय में आता है तब मुख न मुदित हो दुखित दिखे॥
तपन ताप से नभ मण्डल औ धरती जब यह तप जाती।
पली छाव में मृदुल लता जो मूर्च्छित होती अकुलाती ॥७६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चरित-शरण में जब आता है शील-छाँव में पलता है।
ज्ञान स्वयं यह अविनश्वर शुचि पूर्ण-ज्ञान में ढलता है।
उचित शाण पर उचित समय तक अनगढ़ हीरा जब चढ़ता।
सुजनों के वह कण्ठहार हो मूल्य चरम तक तब बढ़ता ॥७७॥

नहीं भूलता उपकारक को कृतज्ञता गुण धरता है।
श्वान सन्त सम कम सोता है निद्रा से अति डरता है॥
किन्तु द्वेष रखता है निशिदिन निजी जाति से खेद यही।
खेल खेलता कर्म कहाँ कब किस विध खुलता भेद नहीं ॥७८॥

उपादान हो निमित्त हो या गौण मुख्य की शर्त नहीं।
कार्य पूर्ण हो जाने पर फिर कारण से कुछ अर्थ नहीं॥
बढ़ते बढ़ते ऊपर चढ़ते अंतिम मंजिल वह आती।
एक एक कर क्रमशः पीछे सभी सीढ़ियाँ रह जाती ॥७९॥

अशुभ-भाव से जनित भयंकर कर्मों का वह नाश करे।
शुभ भावों में वास कर रहे ध्यान सही जिन दास ! अरे !
पवन योग पा उद्दीपित वह होता दावानल वन में।
पूर्ण जलाता राख बनाता पूरण वन को वह क्षण में ॥८०॥

यदपि मनुज की मोह भाव से सुप्त चेतना होती है।
विराग पहली दृष्टि दूसरी राग रंगिनी होती है॥
बादल दल से गिरती धारा प्रथम समय में विमला हो।
ज्यों ही धरती को आ छूती धूमिल पंकिल समला हो ॥८१॥

ऐसा देखा जाता जग में सभी नहीं श्रीफल खाते।
मनुज तोड़ कर खाता हाथी गिरे हुए श्रीफल खाते॥
आशा के तो दास नहीं हैं समता धन के धनी बने।
मुक्ता खाता हंस मोक्षफल खाता है मुनि गुणी बने ॥८२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पल-पल में प्रति पदार्थ-दल में अपनी अपनी पर्यायें।
नई-नई छवि लेकर उठती मिटती रहती क्षणिकायें॥
तरंगमाला तरल छबीली पवन चले तब जल में है।
झिलमिल, झिलमिल करती उठती और समाती पल में है ॥८३॥

नहीं काल में नहीं काल से सुख मिल सकता ज्ञात रहे।
सुख तो निर्मल गुण है अपना आत्म तत्त्व के साथ रहे॥
हित चाहो तो मन वच तन से निज आतम में लीन रहो।
यही प्रथम कर्तव्य रहा है भूल कभी मत दीन रहो ॥८४॥

विज्ञ जनों के सेव्य नहीं है रहा काल यह ध्येय नहीं।
ज्ञेय भले हो नियत रहा हो किन्तु नियम से हेय सही॥
मोक्षमार्ग में शुचि चेतन ही सेव्य रहा है ध्येय रहा।
अमेय भी है उपेय भी है शान्त सुधासम पेय रहा ॥८५॥

विषय त्याग से डरते हैं जो मूढ़ रहे वे भूल रहे।
मुक्ति समय पर मिलती इस विध कहते हैं प्रतिकूल रहे॥
मोह-भूत के वशीभूत हो आत्म-बोध से रहित हुए।
कषाय-वश नर क्या नहिं करता पाप पंक में पतित हुए ॥८६॥

निजी जाति के प्रति ईर्ष्या नहिं काक सदा अनुराग धरे।
दिन में तो सम्भोग-कार्य में ना रत हो ना राग करे॥
तदपि कहाँ है काक समादृत कारण का कुछ पता नहीं।
लगता इसमें रुढ़ि रही हो नीति हमें यह बता रही ॥८७॥

आम्रादिक तरु सम जो होता सरस फलों से भरा नहीं।
फूल फूलता यद्यपि जिसमें गन्ध नहीं है हरा नहीं।
इक्षु दण्ड उद्दण्ड रहा है किन्तु रहा वह सरस महा।
इसीलिए आ-बाल वृद्ध सब जिसे चाहते हरस रहा ॥८८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तन के आश्रित जितने तप हैं गौण सभी तब होते हैं।
जरा दशा में साधक मुनिजन मौन शमी जब होते हैं॥
जिसे रोग मंदाग्नि हुआ या जिसने भोजन पाया है।
इष्ट मिष्ट भोजन से अब ना अर्थ रहा प्रभु गाया है ॥८९॥

उचित नाव के आश्रित जन को शीघ्र नदी का तीर मिले।
छिद्र सहित यदि नाव मिली तो घोर रसातल पीर मिले॥
शासक शासन उचित चलाता सबका वह संताप हरे।
अनुचित सो अभिशाप रहा है आप, पाप परिताप करे ॥९०॥

बिन करनी कथनी में रत है तापस का भ्रम-भाव रहा।
ज्ञात नहीं अनुभूत नहिं क्या? शुचितम आतम-भाव रहा॥
पित्तकोप से ज्वर पीड़ित या सन्निपात का वह रोगी।
जैसा प्रलाप करता रहता उसे मानते बुध योगी ॥९१॥

जिस की चर्या गो सम होती पाप कार्य में मौन रहा।
बिन पूछे निर्भीक बोलता धर्म कार्य हो गौण रहा॥
गवेषणा में डूब रहा है लोकेषण से भीत रहा।
दुर्जन द्वारा दिये गये दुख उपसर्गों को जीत रहा ॥९२॥

शरणागत के शरण प्रदाता निरीह तरु सम उपकारी।
नियमित उद्यम में रत रहता रवि शशि सम है तमहारी॥
सिंह वृत्ति का धारक भी है संग रहित है हवा समा।
योगों में तो अचल मेरु है धरा बना है धार क्षमा ॥९३॥

अहि सम जिसका खुद का घर नहिं सत्य बोलता इक रसना।
जिसके तन मन सर्व-इन्द्रियाँ स्ववश कूर्म सम, परवश ना॥
देख चुका गन्तव्य स्थान को किन्तु नदी सम भाग रहा।
योगी वह जयवन्त रहे नित भजूँ उसे मन जाग रहा ॥९४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विज्ञों का उपयोग चपल यदि निज को निहार नहिं पाते।
अज्ञों की क्या बात रही फिर पर में विहार कर जाते॥
सलिल स्वच्छ हो सरवर का पर मुख उसमें नहिं दिख सकता।
जहाँ पवन से लहर उठ रहीं वहाँ नेत्र क्या? टिक सकता ॥९५॥

जननी सुत को ताडित करती नेत्र सजल हो सुत रोता।
माँ सहलाती, भूल तुरत सब हँसमुख सुत प्रत्युत होता॥
नेत्र रहे प्रतिशोध-भाव बिन अपलक बालक जैसा हो।
महाभाग्य वह यथाजात यति व्रत का पालक वैसा हो ॥९६॥

शब्दों के तो पात्र रहे हैं जग के सारे शास्त्र महा।
मल का कोई पात्र यहाँ है तेरा जड़मय गात्र रहा॥
सुख का पावन पात्र रहा तो शुचितम चेतन मात्र रहा।
ऐसा मन में चिंतन कर लो अपात्र सब सर्वत्र रहा ॥९७॥

जो भी देखी जाती हमसे वही प्रकृति स्त्री कहलाती।
अमूर्त जो है पुरुष रहा वह ऐसी कविता यह गाती॥
मूर्त रूप से देखा जाता स्त्री पुरुषों का अभिनय जो।
केवल यह व्यवहार रहा है भीतर निश्चय अतिशय हो ॥९८॥

बल में बालक हूँ किस लायक बोध कहाँ मुझ में स्वामी।
तव गुणगण की स्तुति करने से पूर्ण बनूँ तुम सा नामी॥
गिरि से गिरती सरिता पहली पतली सी ही चलती है।
किन्तु अन्त में रूप बदलती सागर में जा ढलती है ॥९९॥

रहे नीति के वीर प्रणेता शिवपथ के जो नेता हो!
नीति प्राप्त हो तुम्हें भजूँ मैं सकल तत्त्व के वेत्ता हो॥
क्यों न निर्धनी करे धनिक की सेवा धन से प्रीति रही।
रीति नीति हम कभी न भूलें गीत गा रही नीति यही ॥१००॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चैतन्यचन्द्रोदयशतक

(ज्ञानोदय छन्द)

भविक जनों का सागर उमड़े, मुमुक्षुपन का ज्वार उठे।
पूर्ण प्रकाशित पन्थ तथा हो, तम का झट संसार हटे॥
चेतन का चन्द्रोदय प्यारा, चारु चाँदनी खिली हुई।
उसे नमन हो विनम्र मति से, श्रद्धा रुचि से धुली हुई ॥१॥

बाहर ना है भीतर है सो, सब सारों में सार रहा।
दिखा न सकते झाँक देख लो, चेतन गुण अविकार रहा॥
भाव-भक्ति से शास्त्र युक्ति से, चेतन विषयक बात करूँ।
विरूपता का वारण करके, स्वरूपता को प्राप्त करूँ ॥२॥

अपना अपने आप जीव यह, करता नित संवेदन है।
तभी जिनागम में आतम का, लक्षण माना चेतन है॥
भले, शेष सब द्रव्यों में भी, नाना विध गुण-दल होता।
किन्तु बिना चेतन के हो सो, जागो चेतन क्यों सोता? ॥३॥

द्विविध रहा सो चेतन गुण है, शास्त्रों में ऋषि गाते हैं।
ज्ञान तथा दर्शन नामों से, युगों युगों से भाते हैं॥
संसारी में अशुद्ध होते, विशुद्ध होते मुक्तों में।
जगा सगा श्रद्धान आज है, जिस विध ऋषि बुध-भक्तों में ॥४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

द्रव्य तथा उनके जितने गुण, सुनो शुद्ध ही हो सारे।
ज्ञान तथा दर्शन गुण भी सो, सदा सदा हो उजियारे॥
पर्यायें ही उलट पलटती, कल्मषता से पूर रहीं।
ऐसे कहने वाले निश्चित, तत्त्वज्ञान से दूर कहीं ॥५॥

द्रव्य गुणों से पर्यायें कब, कहाँ निरी होकर रहतीं।
आश्रित आश्रयदाता में हो, इस विध जिनवाणी कहती॥
जल में तरंग उठती मिटती, पर्यायों की यही दशा।
रंग बिरंगी तरल तरंगी, यथा प्रसंगी सही दिशा ॥६॥

द्रव्य तथा गुण पर्यायों का, तादात्मिक सम्बन्ध रहा।
द्रव्य बराबर वितान उनका, यदपि तदपि का बंध रहा॥
द्रव्य सदा आधार रहा तो, गुण- पर्यय आधेय रहे।
प्रदेश वाले तभी नहीं गुण, आगम कहता ध्येय रहे ॥७॥

प्रदेश वाला ज्ञान रहा तो, ज्ञान गुणी हो विलसित हो।
गुणी बने वे गुण जितने हैं, प्रदेश उतने विकसित हों॥
जीव द्रव्य का अभाव निश्चित, एक साथ हो क्रिया सभी॥
एकमेक हो शेष लेश ना, निरवशेष बस जिया सही ॥८॥

अनाकार है दर्शन फलतः, विशुद्ध रहता है भव में।
ज्ञान रहा साकार इसी से, अशुद्ध आता अनुभव में॥
इस मत को ना सुधी मानते, आगम में ना विहित रहा।
कर्म मलों से लिप्त रहा है, निजी धर्म से रहित रहा ॥९॥

रहा प्रयोजन दर्शन का है, इन्द्रिय मन के विषय जहाँ।
क्रमशः साधक आत्मनिरत हो, दर्शन को फिर समय कहाँ ?
पूर्ण ज्ञान का उदय हुआ जब, घाति कर्म का विलय हुआ।
सब कुछ करने सक्षम सो ही, एक ज्ञान ही अभय रहा ? ॥१०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दर्शन विषयक भाव आपका, आगम से ना मान्य रहा।
विषय ज्ञान का विशेष होता, दर्शन का सामान्य रहा॥
किन्तु वस्तु सामान्य मात्र या, विशेष-मय ही नहीं सही।
उभयात्मक ही स्वरूप सबका, समय धनी ने सही कही ॥११॥

जिसको ढकना वही नहीं फिर, किसको ढकना ढक्कन से।
कर्म आठ ना सात रहें फिर, अर्थ नहीं जब दर्शन से॥
इस पर भी यदि पूर्वाग्रह को, नहीं आपको तजना है।
भाव-भक्ति से चाव शक्ति से, दोषों को फिर भजना है ॥१२॥

सुख का अन्तर्भाव ज्ञान में, होता सो उपचार रहा।
चूँकि अचेतन सुख गुण न्यारा, पूर्ण ज्ञान से सार रहा॥
यूँ ना मानो चेतन गुण तो, तीन बने सो दोष रहा।
ज्ञानमार्गणा में क्या कारण, सुख का क्यों ना घोष रहा? ॥१३॥

जिस कारण से समीचीन सो, ज्ञान यहाँ है बन पाता।
श्रद्धा गुण सो सदा निराला, रहा ज्ञान गुण से साता॥
इसी तरह बस सुख भी होता, स्वयं अचेतन सुधा रहा।
रही उसी की तृप्ति दशा सो, अनन्य होती सदा अहा ॥१४॥

पूर्ण ज्ञान को पाया जिसने, पापों का परिहार किया।
पूज्य बने अरहन्त बने जब, आप्त-पने को धार लिया॥
फिर भी बाधा विरहित सुख का, सेवन जिनने नहीं किया।
इसीलिए तो ज्ञान भिन्न है, भिन्न रहा सुख सही जिया ॥१५॥

ज्ञप्ति रूप जो क्रिया उपजती, सुनो ज्ञान की सृष्टि रही।
तृप्ति रूप जो क्रिया उपजती, सुख गुण की वह सृष्टि रही॥
कर्त्ता विषयक, कारण विषयक, और क्रियागत दोषों को।
इस विध ज्ञानी का लोचन हो, मेटे बुधजन रोषों को ॥१६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ज्ञान प्रकाशक निश्चय से है, निजी तत्त्व का ज्ञात रहे।
तथा दशा दर्शन की भी है, बिना भ्रान्ति निर्भ्रान्त रहे॥
निज को पर को परखे दोनों, यहाँ यही व्यवहार रहा।
विज्ञ तजे एकान्त पंथ को, अनेकान्त ही सार रहा ॥१७॥

चेतन पर आधारित रहता, समुचित मूल्यांकन सुख का।
ज्ञानहीन यदि मुक्ति मिली भी, सेवन किससे हो उसका॥
पंडित जन भी पाँच पाप तज, पंचाचारों को पालें।
मात्र प्रयोजन शिवसुख का हो, कंटक पथ पर जो चालें ॥१८॥

स्वतंत्र होकर सदा क्रिया को, करता कर्त्ता रहता है।
किन्तु हमें यह ज्ञात रहे बस, योग करण का रहता है॥
तथा क्रिया करणानुसार ही, नियम रूप से चलती है।
कर्त्ता का परिणाम रहा सो, क्रिया कभी ना फलती है ॥१९॥

करण रहा उपकरण रहा हो, कभी न कर्त्ता हो सकता।
कुछ भी करने में वह फलतः, कैसा समर्थ हो सकता॥
निज धर्मों को करने वाला, कभी नहीं परतंत्र बने।
कर्त्ता स्वतंत्र होता चालक, कभी नहीं सो यन्त्र बने ॥२०॥

कौन रहा है किसका कर्त्ता क्या, क्या किसका कर्म रहा ?।
क्रिया करण भी किसके कितने,किस किस का क्या धर्म रहा॥
स्वरूप इनके अब तक तुम से, विवेक बिन ना विदित हुये।
मोह भाव के वशीभूत हो, प्रभूत भव में भ्रमित हुये ॥२१॥

निखिल सृष्टि है रचना जिसकी, चराचरों का कर्त्ता है।
पूर्ण प्रेम से पालनहारा, अन्त अन्त में हर्त्ता है॥
ईश्वर वह है उसी वंश के, अंश रहे हम यूँ कहते।
भ्रमित हुये हैं अज्ञानी जन, और निरंतर दुख सहते ॥२२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जो है उसका नाश नहीं जो, ना है उसका जनन नहीं।
जो कुछ परवश घटता दिखता, समझो रूपान्तरण सही॥
अनल योग से शीतल जल भी, जलता जब तक खलता है।
जलपन को पर जलांजली दे, परपन में ना ढलता है ॥२३॥

निमित्त का भी अपना न्यारा, प्रभाव देखा जाता है।
तभी अन्यथा रूप वस्तु में, विभाव देखा जाता है॥
स्फटिक भले ही धवल रूप ले, रूप बदलता लाल बने।
खिला नहीं या खुला खिला हो, पुष्प सामने लाल तने ॥२४॥

योग मोह के वशीभूत हो, सुचिर काल से ये प्राणी।
स्वभाव तजकर विभाव भजता, तन को पहना अज्ञानी॥
कर्मोदय से भाव बने सो, भावों से फिर कर्मफला।
बीज वृक्ष से गिरा धरा पे, वृक्ष बना यूँ परम्परा ॥२५॥

कर्म निर्जरा करना है सो, शोधन भावों का करना।
ऐसा मन में निश्चय ठाना, अविरल अविकल पथ चलना॥
गुरु से प्रसाद पायस पाया, जिनवाणी की भक्ति भली।
सुनो सुनाता प्रसन्न होकर, सदुपयोग हो शक्ति मिली ॥२६॥

कभी अंकुरित जला बीज हो, तरु बनना तो दूर रहा।
मोह भाव के अभाव होते, कर्मबन्ध सो चूर रहा॥
कहीं कभी भी बिन कारण ही, कार्य हुआ यदि मिलता है।
तो कार्यों के विनाश में भी, वही न्याय फिर चलता है ॥२७॥

बद्ध मोह का उदय हुआ सो, नव्य मोह के भाव जगे।
फिर उससे नव मोह कर्म का, बंध हुआ फिर भाव जगे॥
कहीं न इसका अन्त रहा सो, मुक्ति मिलेगी फिर कैसी ?।
मात्र सदाशिव सुखी मिलेगा, कभी न धारो मति ऐसी ॥२८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

निस्संगों की संगति करना, सदुपदेश पाना गुरु से।
भावभक्ति से जिनवाणी सुन, धारण करना सो उर से॥
जिससे मिथ्यादर्शन भगता, समदर्शन सो जगता है।
संत बताते भविकजनों में, ज्ञानोदय जगमगता है ॥२९॥

आभरणों से आवरणों से, रहित रहे सुर वन्दित हैं।
अस्त्रों से भी शस्त्रों से भी, वस्त्रों से भी वंचित हैं॥
विरागता के निलय रहे उन, जिनबिम्बों के दर्शन से।
निधत्ति काचित कर्मों के भी, विलय रहे मन हर्षण से ॥३०॥

क्षुधा तृषादिक दोष अठारह, जहाँ नहीं जिनदेव रहे।
बने दिगम्बर संग रहित हैं, वीतराग गुरुदेव रहे॥
जहाँ दया है वहीं धर्म है, संतों का यूँ कहना है।
इन तीनों पर श्रद्धा रखना, समदर्शन को गहना है ॥३१॥

आप्तपने को प्राप्त किया है, घाति कर्म पर घात किया।
समाप्त इन्द्रिय व्यापारों को, कर केवलपन साथ लिया॥
द्रव्य गुणों की पर्यायों से, जिन को पूजो नमन करो।
इसमें शंका तिल भर भी ना, मोह भाव का वमन करो ॥३२॥

दृष्टि-मोह औ चरित मोह यूँ, मोह मूल में द्विविध रहा।
सार्थक नामों को ये धारे, क्रम से कहते विबुध यहाँ॥
एक रहा है घना तिमिर सो, अन्धा करता घातक है।
और दूसरा विषाक्त काँटा, लँगड़ा करता पातक है ॥३३॥

इसी - मोह ने सुचिरकाल से, चेतन को तन पहनाया।
व्यग्र उग्र उपयोग बनाकर, समग्रता को बहकाया॥
कौन लगाये अंकुश इस पर, चंचलतर है चितवाला।
दिग्भ्रम होकर वन में जैसा, हाथी भ्रमता मतवाला ॥३४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मोह सहित या मोह रहित हो, कर्मों का है द्वार रहा।
तभी योग भी रहा मोक्ष का, सदा विरोधी खार रहा॥
थके - मुँदे जन स्नान कराते, और मिटाते ताप अहो।
फिर क्या वस्त्रादिक से तन को, नहीं सुखाते आप कहो ॥३५॥

मोक्षमार्ग का परम शत्रु है, दृष्टि मोह तो यही रहा।
चरितमोह का क्रमिक नाश हो, विकास पथ का सही रहा॥
चतुर्थ-गुण में सूत्रपात यूँ, शिवपथ का कुछ बुध कहते।
स्वीकारो उपचार मात्र वह, 'सूत्र' और कुछ ही कहते ॥३६॥

अंतरंग में रत्नत्रय सो, झिलमिल झिलमिल करता हो।
तथा बाह्य में महाव्रतों का, धारण पालन चलता हो॥
आदिम तीनों कषाय अनुदित, कषाय अंतिम उदित रहे॥
मोक्षमार्ग यह मिश्रभाव ले, सुधीजनों को विदित रहे ॥३७॥

आत्म प्रदेशों में चंचलता, अर्पित योगाश्रय से हो।
कर्मों नो - कर्मों का आस्रव, शरीरनामोदय से हो॥
यही योग है त्रिधा रहा है, तन से मन से वचनों से।
नहीं पराश्रित निजी शक्ति है, कही गई यों संतों से ॥३८॥

दोनों मोहों का वह जब तक, मिलता रहता योग रहा।
शुभाशुभादिक त्रिविध रूप ले, खिलता है उपयोग रहा॥
क्षीण मोह तक दशा अधूरी, मानी जाती है न्यारी।
उससे ऊपर अचिन्त्य महिमा चेतन की पूरी प्यारी ॥३९॥

मिथ्या आवासों में बसता, विलासता का दास बना।
भोग मात्र बस जिसे दीखते, कषाय कलुषित श्वास घना॥
दानादिक सत्कर्मों से तो, सौ - सौ कोसों दूर रहा।
यही रहा अशुभोपयोग है, कृतघ्नता से पूर रहा ॥४०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

राष्ट्र विरोधी गतिविधियों में, भोजन जिनके पचते हैं।
पर दोषों की गवेषणा में, पल-पल जिन के फलते हैं॥
अहित निहित है किस में हित है, निजी बोध से विरत रहे।
दुर्गुण ये अशुभोपयोग हैं, संत कहें गुण निरत रहे ॥४१॥

जिस विध तिल से तेल निकलता, दुग्धमथन से घृत मिलता।
उस विध तप से चेतन तन से, निरा हुआ हो ना मिलता॥
मूढ़ गूढ़ता यूँ न सूँघता, तन चेतन को एक गिने।
परिणत हो अशुभोपयोग से, विषयों में अतिरेक सने ॥४२॥

कभी-कभी तो व्रत नियमों का, धारण साधन करता है।
परवश होकर दया धर्म का, पालन पोषण करता है॥
देखा देखी परम तत्त्व की, प्रतीति करता प्रीति कभी।
अपने सुख को पाने यूँ तो, बहुत पुरानी रीति रही ॥४३॥

विगत काल में कई बार तो, वेष दिगम्बर धारा था।
अंतिम ग्रैवेयक तक जाकर, पतित हुआ था हारा था॥
मुक्ति मिली ना मिली भुक्ति मिट, रोग शोक ही साथ रहे।
दुर्मति होकर दुर्गतियों में, मलते - मलते हाथ रहे ॥४४॥

दृष्टि मोह वह पूर्ण रूप से, सासादन में उदित नहीं।
फलतः शुभ उपयोग वहाँ पर, सुनो मानना उचित नहीं॥
प्रथम थान सम अशुभ नहीं पर, कषाय आदिम उदित हुआ।
बोध अशुभ ही बना रहा सो, जिन आगम से विदित हुआ ॥४५॥

सर्वघाति का उदय भले हो, ज्ञान मिश्र में मिश्र रहा।
सासादन में मिथ्या होता, जिससे वह तो उग्र रहा॥
आदिम कषाय उदित नहीं, सो यहाँ अशुभता घनी नहीं।
दोनों में तरतमता मानी, फिर भी शुभता बनी नहीं ॥४६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

कर्म पाश से कसे हुये हैं, दुःसह दुःखों में डूबे।
ग्रसित हुये हैं कई अभावों, से जीवन से भी ऊबे॥
उन जीवों को लख करुणा से, द्रवीभूत हो उठते हैं।
यथा शक्य पर दुःख मिटाने, शुभोपयोगी उठते हैं ॥४७॥

ज्ञान वृद्ध हैं, तपो वृद्ध हैं, दर्शन में भी वृद्ध रहे।
सत्पथ महिमा फैलाने में, तथा सतत कटिबद्ध रहे॥
शुभोपयोगी उन्हें देखकर, मुदित भाव को प्रकट करे।
सरोवरों में यथा कमलदल, दिनकर को लख उमड़ पड़े ॥४८॥

वीतराग बनकर जिनवर ने, सूक्ष्म तत्त्व का कथन किया।
उसको अपनी आस्था का बस, विषय बनाया नमन किया॥
जिसका जीवन जिनवर के गुण, गाने में ही बीत रहा।
शुभोपयोगी निसर्ग से वह, ज्ञानोदय का गीत रहा ॥४९॥

सकलचरण या विकलचरण हो, जहाँ चरण की गंध नहीं।
इन्द्रिय प्राणी संयम का भी, जिससे वह सम्बन्ध नहीं॥
शुद्ध असंयम चतुर्थ गुण में, हो इस विध गुरु हैं कहते।
शुभोपयोगी ईश भक्ति में, सदा वहाँ बस हैं रहते ॥५०॥

वसुविध मद मदिरा पी पर को,-अपमानित भी ना करता।
भोगों में उपभोगों में भी, रचना पचना ना करता॥
दृष्टि नाश से भीत रहा हो, धर्म वही व्यवहार रहा।
परम्परा से अक्षय सुख के, हेतुपना सो धार रहा ॥५१॥

इस पर भी वह शुभोपयोगी, शेष कषायों के वश हो।
ऐसा कुछ तो करता जिस पर, पंडितजन भी नाखुश हो॥
आदिनाथ के आदिम अंगज, आदिम चक्री भरत रहा।
कामदेव पर निजी अनुज पर, चक्र चलाया गलत रहा ॥५२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

इस विध शुभ उपयोग त्रिविध है, जघन्य का यूँ रूप रहा।
मध्यम क्या है सुनो सुनाता, अनेक विध सो स्तूप रहा॥
पंचम गुण में तरतमतायें, हमें दिखाती हैं मिलती।
चतुर्थ गुण से अनगिन गुण की, कर्म निर्जरा है चलती ॥५३॥

शूल लगा पद चल ना सकता, शल्य रहित ही व्रती बने।
व्रती नहीं व्रत लेने भर से, ऐसे जग में व्रती घने॥
मिथ्यात्वादिक तीन शल्य तज, अणु गुण शिक्षा व्रत धारे।
पाप भार कम करके श्रावक, बुधजन आदृत हो प्यारे ॥५४॥

नव कर्मों की नहीं निर्जरा, संवर का कब पात्र रहा।
व्रत का पालन और नहीं कुछ, पुण्य बढ़ाना मात्र रहा॥
समीचीन हो नहीं आपकी, सोच समझ जो इस विध है।
व्रत लेते गुण परिवर्तन क्यों, बिन संवर यह किस विध है ॥५५॥

पुण्य बंध का कारण होता, वह तो शुभ उपयोग रहा।
पाप कर्म का संवर जिससे, यही शुद्ध उपयोग रहा॥
चूँकि कार्य दो जहाँ हो रहे, कारण दो अनिवार्य रहे।
इस विध कुतर्क कभी न करते, न्याय विशारद आर्य रहे ॥५६॥

एक साथ भी अनेक देखो! देखे जाते कार्य यहाँ।
अनेक कारण बिना एक ही, कर्त्ता करता कार्य अहा!॥
अन्न पकाती काष्ठ जलाती, वस्तु प्रकाशित आग करे।
यही युक्ति अकलंकदेव की, पक्षपात तज जाग अरे ॥५७॥

प्रासंगिक उपयोगों में बस, एक काल में एक मिले।
शुभ हो या हो अशुभ, शुद्ध हो, अनुभव में तो एक ढले॥
योगों में हो एक योग ज्यों, आगम में गुरु बतलाते।
कुछ भी कर लो एक साथ क्या देख, सूँघ, सुन, चख पाते ॥५८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अनुदिन श्रावक संध्याओं में, सामायिक में रमता है।
शुचि उपयोगामृत पीता यूँ, कहना अनुचित भ्रमता है॥
चूँकि तीसरा कषायमन्दा, पड़ता शुभ उपयोग रहा।
शुद्ध भावना में रत होना, शुद्ध न शुभ उपयोग रहा ॥५९॥

जिसका जीवन व्यतीत होता, व्रत नियमों के रक्षण में।
उपासना में गुरुवंदन में, प्रतिदिन प्रभु पद अर्चन में॥
बादर पापों अपवादों से, तथा बचाता अपने को।
व्रती बना पर महाव्रती के, सदा देखता सपने को ॥६०॥

द्वीप स्वयम्भूरमण जलधि में, अनगिन व्रत पालक मिलते।
नभचर जलचर भूचर भी पशु, बिना वैर मिल-जुल चलते॥
चूँकि दूसरे कषाय अनुदित, होने का जो योग रहा।
बिना किसी उपदेश उदित सो, उनमें शुभ उपयोग रहा ॥६१॥

तत्त्व ज्ञान का प्रभाव देखो, रहे निशाचर दंसक हो।
सिंह व्याघ्र भी क्रूर कर्म तज, बने निरामिष हिंसक हो॥
वेगों आवेगों को तज कर, संवेगों को धारे हैं।
रूप निहारो आप आपके, आदर्शों को पाले हैं ॥६२॥

जिसका जीवन महाव्रतों से, मंडित होता मनो जभी।
चूँकि तीसरे कषाय का वह, अनुदय होता सुनो तभी॥
चतुर्थगुण में उदित हुआ फिर, विकास का संयोग बना।
मुनिपन में निजकाष्ठा छूता, इस विध शुभ उपयोग घना ॥६३॥

जब जब चौथे कषाय में वह, तीव्र वेग भी आता है।
तब तब निश्चित प्रमाद धरती, पर गिरना हो जाता है॥
भले बाह्य में वचनादिक का, प्रयोग देखा ना जाता।
किन्तु श्रमण का सप्तम गुण में, टिकना तब हो ना पाता ॥६४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

प्रमाद रिपु है, कृतघ्न भी है, मुनि में जब यह नहीं रहे।
वहाँ शुद्ध उपयोग उगेगा, गुप्ति दशा बस! बनी रहे॥
हाँ! मुनि अपने उपकरणों को, ले रखने में लग जाता।
तब तो शुभ उपयोग रहेगा, भावुक बाहर भग आता ॥६५॥

प्रमत्तगुण में जब मुनि होता, उसका शुभ उपयोग रहे।
सप्तम में जब प्रवेश पाता, तब तो शुचि उपयोग रहे॥
आगम इसमें सम्मत ना है, चेष्टा जब तक मुनि में हो।
शुभ से ऊपर उठ ना सकता, कभी न संशय मन में हो ॥६६॥

प्रमाद विरहित सप्तम गुण सो, दो भागों में भाजित है।
समिति परक तो एक रहा है, गुप्ति परक भी राजित है॥
ध्यानात्मक ही सप्तम गुण हो, एकान्ती कुछ यूँ कहते।
सत्संगति कर आगम सुनते, दूर तथ्य से ना रहते ॥६७॥

मोक्ष रूप शुद्धोपयोग ना, मोक्षमार्ग वह होता है।
शुद्ध रूप केवल का कारण, क्षण में अघ को धोता है॥
केवल बल से विकल रहा पर, विकल्प विरहित है होता।
इसीलिए शुद्धोपयोग सो, श्रमणों का भूषण होता ॥६८॥

समता को है धारण करते, सुख के क्षण में दुर्दिन में।
अंतरंग बहिरंग संग बिन, प्रसन्न हैं चेतन-धन में॥
शत्रु मित्र को एक गिने हैं, वीतराग हैं श्रमण बने।
आप शुद्ध उपयोग मोक्ष है, उसको मेरे नमन घने ॥६९॥

श्रमण बने इन्द्रिय विषयों से, पूर्ण रूप से विरत रहे।
निज ही निज से निजवेदन में, नियत रूप से निरत रहे॥
अबुद्धि पूर्वक राग भाव का, सहज रूप से क्षरण बने।
आप शुद्ध उपयोग मोक्ष है, उसको मेरे नमन घने ॥७०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

राग नहीं पर कहीं राग से, अंतर में वह लगे हुये।
तभी ध्यान का विषय और हो, विषय विरत हो जगे हुये॥
कर्म बन्ध का अनुभव भी तो, करते रहते श्रमण बने।
आप शुद्ध उपयोग मोक्ष है, उसको मेरे नमन घने ॥७१॥

निर्मोही हो मोह कर्म को, मूल रूप से राख किया।
मोह रहित हो शेष घाति को, पूर्ण रूप से खाक किया॥
धर्म-ध्यान की शुक्लध्यान की, अग्नि जलाओ श्रमण सुने।
आप शुद्ध उपयोग मोक्ष है, उसको मेरे नमन घने ॥७२॥

अंग रंग से अनंग से क्या, सूख गये या फूल गये।
विवेक वाले आप पराये, पूर्ण रूप से भूल गये॥
चेतन में बस और और कर, उतर उतर कर सघन बने।
आप शुद्ध उपयोग मोक्ष है, उसको मेरे नमन घने ॥७३॥

पहले गुण से प्रमत्त गुण तक, नौंवे गुण तक सप्तम से।
समझदार हो समझो इनको, दशवें गुण में हैं क्रम से॥
करने होने रहने वाली, राग प्रणाली चलती है।
कहीं व्यक्त हैं कहीं सुप्त सी, आग ढकी सी जलती है ॥७४॥

कही गईं ये सभी क्रियायें, नूतन विधि के कारण हैं।
भववर्धक हैं भवकानन में, दुख दारुण हैं मारण हैं॥
मोहभूत के वशीभूत हो, तनधारी जग के प्राणी।
यथाख्यात चारित से वंचित, होते सो है अज्ञानी ॥७५॥

राग सत्व उपशान्त मोह में, केवल का जो बाधक है।
क्षीण मोह में ध्यान कर्म है, केवल का सो साधक है॥
शेष गुणों में ध्यान कर्म से, विरहित सो उपयोग रहा।
विशद रहा है विमल रहा है, विचलित तो बस योग रहा ॥७६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आगम में शुद्धोपयोग को, सन्तों ने तो फूल कहा।
अनन्त केवल बोध मधुर फल, क्यों इसको तू भूल रहा ?॥
किसी पुरुष ने कहीं कभी भी, बिना पुष्प क्या फल पाया।
इसीलिए तो प्रथम पुष्प को, पाने मन को समझाया ॥७७॥

गन्ध भरा उस पुष्प तुल्य हो, यहाँ शुद्ध उपयोग रहा।
बिना गन्ध की कलिका सम ही, माना शुभ उपयोग रहा॥
इन दोनों से रहित वृक्ष ज्यों, निरा दिगम्बर खड़ा रहा।
नमूँ धरा को जहाँ श्रमण हो, शुभ शुचि से बल बढ़ा रहा ॥७८॥

श्रुतज्ञान में ढला हुआ ही, अशुभ ध्यान का वारण है।
सुनो शुद्ध उपयोग रहा वह, पूर्ण ज्ञान का कारण है॥
यह मत उचित न युगल श्रेणि में, रमते जब मुनि संगत हो।
उन्हें चक्षुदर्शन भी होता, आगम तुमको अवगत हो ॥७९॥

ज्ञान तथा दर्शनमय होते, आतम के उपयोग रहे।
ध्यान रहा परिणाम ज्ञान का, इस विध यदि तुम धोक रहे॥
दर्शन का उपयोग रहा तब, ध्यान हीनता फिर मानो।
ना मानो तो सही सही क्या, जिनवाणी से पहचानो ॥८०॥

बाह्य जल्प की बात नहीं है, भीतर की तुम बात सुनो।
अन्तर्जल्पन भी साधा है, मौन शेष बस साथ मनो॥
आतम को पाने आतम जब, आतम में अवगाह लिया।
अनन्त आलोकित हो उठता, घातिकर्म का दाह किया ॥८१॥

यथा ज्ञान के उपयोगों में, मलिन भाव वह उदित रहे।
दर्शन के उपयोगों में भी, क्यों ना हो, यह उचित रहे॥
कारण दोनों उपयोगों में, चेतनता सामान्य रही।
नहीं धारणा उचित रही यह, आगम में ना मान्य रही ॥८२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दर्शन का उपयोग कभी भी, मिथ्या माना नहीं गया।
उसका बंधन मोह भाव से, भले रहा हो कहीं जिया॥
तथा मार्गणा में भी उसको, विभङ्ग सम सो कहाँ कहा ?।
अचक्षु दर्शन को भी कह दो, कुचक्षु दर्शन जहाँ तहाँ ॥८३॥

निगोद जीवों में जो मिलता, नित्योद्घाटित ज्ञान रहा।
श्रुत कहता है उसी ज्ञान को, आंशिक केवलज्ञान अहा॥
आत्म द्रव्य का प्रवाह उससे, फलतः होता विदित रहे।
किन्तु मिश्र सो मिश्र समय पर, सुनो नाश से सहित रहे ॥८४॥

तदपि सर्वथा मत्यादिक को, केवल सम तुम मान रहे।
मात्र भाव स्वाभाविक हो तो, वैभाविक क्या बान रहे ?॥
चिर से चिर तक सादि सान्त या,सादि हुए चिर काल रहे।
अनादि का हो सान्त रहे या, प्रश्न कई यूँ पाल रहे ॥८५॥

अंतिम उपान्त गुण में शिव में, पूर्णज्ञान सम पहिचानो।
चक्षु आदि दर्शन ये, अवयव केवलदर्शन के मानो॥
केवल ज्ञानावरणोदय में, जिस विधि मति श्रुत मिलते हैं।
उसके मिटने पर भी मिलते, वहाँ दोष क्या खिलते हैं ? ॥८६॥

मतिपूर्वक या मन से उपजा, इसमें कुछ ना अचरज है।
यथा ज्ञानमति अक्षज है, सो श्रुतज्ञान भी अक्षज हो॥
यदि ऐसा है मतिपूर्वक ही, मनपर्यय है अक्षज हो।
तथा रहो अनुमान ज्ञान भी, अक्षज ही, ना लिंगज हो ॥८७॥

मनवालों में ही श्रुत होता, ऐसा आग्रह मत कर लो।
बिन मनवालों में भी सुन लो, श्रुत होता है श्रुत वर लो॥
स्पर्शादिक इन्द्रिय विषयों से, भिन्न विषय श्रुत का होता।
उपादेय क्या हेय रहा क्या, इस लक्षण को श्रुत ढोता ॥८८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

यत्नशील ना विशद रहा है, दर्पण केवलज्ञान रहा।
जिसमें जो है प्रतिबिम्बित है, यह जिसका सम्मान रहा॥
शेष ज्ञान जब यत्न करे तब, कुछ कुछ ही बस चखते हैं।
प्रायः पर का आकर्षण है, आकुलता में बिकते हैं ॥८९॥

अवधिज्ञान भी केवल सम है, यह कहना भी अनुचित है।
दोनों की वह तुल्य विशदता, नहीं रही यह अवगत है॥
जीवों को भी मूर्त देखता, होता पर के आश्रित है।
प्रमादमूलक तथा उपजता, विकल्प वाला भाषित है ॥९०॥

निजानुभव प्रत्यक्ष रहा जो, जिसमें पर का काम नहीं।
निश्चित केवल तुल्य रहा है, अस्थिरता का नाम नहीं॥
तथा जिनागम में वर्णित है, केवल का भी कारण है।
इस अभिमत का भी संतों ने, स्वयं किया सो वारण है ॥९१॥

एक तरह का बंधन ही वह, ध्यान ध्यान में लगा हुआ।
स्वतंत्र कैसा माना जाता, भले रहा हो जगा हुआ॥
स्वतंत्रता बिन नहीं विशदता, उस बिन केवल सम ज्ञानी।
फिर किस विध हो सकता है वह, विस्मय है यह मनमानी ॥९२॥

निश्चय में तो विषय बनाना, निज को स्वभाव माना है।
तथा सकल को विषय बनाना, सो व्यवहारिक बाना है॥
इसीलिए बस साधु जनों का, केवल सम, प्रत्यक्ष रहे।
इस मत में भी पूर्व दोष सब, आते हैं, यूँ दक्ष कहें ॥९३॥

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, जिनवर में सुख जिस विध है।
बारहवें गुण में चढ़ बैठे, मुनिवर में भी उस विध है॥
यह तो मत आगम से बाधित, अपना अपना अनुभव है।
अमितवीर्य बिन अमित बोध सुख, किस विध किसमें संभव है ॥९४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आप्त बने हैं उपदेशक हैं, कभी न हो पूरण ज्ञानी।
आतम में जो लीन रहे तो, कैसे वक्ता मन मानी ? ॥
दोष लगाना इस विध सो ना, शिष्टों का परिशिष्ट रहा।
वीतराग बन कर्म विजेता, बनना ही बस इष्ट यहाँ ॥९५॥

सयोग गुण में विहार करते, और देशना देते हैं।
एकाधिक या एक बार तो, भोजन दिन में लेते हैं॥
तथा असाता में रोगी हो, योग्य चिकित्सा लेते हैं।
तन की स्थिति में जो कुछ भी हो, कर लेते कर देते हैं ॥९६॥

अंतराय का विलय हुआ सो, अनंत बल भी तत्क्षण हो।
श्रेष्ठ वर्गणायें आती सो, तन का भी संरक्षण हो॥
मोह कर्म का नाश हुआ सो, क्षुधा रोग का नाम नहीं।
रुकी हुई है, पूर्व उदीरण, वेद कर्म का काम नहीं ॥९७॥

कर्म काट जिन महाबली हो, रत्नत्रय के साधन से।
क्यों न गये शिव जिनमें जितना, अभी नहीं इस कारण से॥
नहीं करो यूँ उतावली तुम, सुनो बनो हठवन्त नहीं।
प्रसंग परिसर से जुड़ सुनते, सदा सुधी गुणवन्त सही ॥९८॥

प्रथम आयु सम सब कर्मों की, स्थिति को करना होता है।
यथाकाल फिर ध्यान योग से, उनको हरना होता है॥
प्राणघात से हिंसा होती, आयु कर्म को प्राण कहा।
उसे पूर्ण कर बाद मोक्ष को, करते जिन प्रस्थान अहा ॥९९॥

स्थूल योग या सूक्ष्म योग से, जब तक जिनवर सहित रहे।
आकुलता का दाता साता, आता रहता विदित रहे॥
उदय दशा का अनुभव करते, सिद्धपने का आज नहीं।
आज अनागत का अनुभव है, अतीत का भी आज सही ॥१००॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

निजानुभवशतक

(वसन्ततिलका छन्द)

जो जानते सकल लोक तथा अलोक,
ना मान-यान परिरूढ़ सदा अशोक!
ऐसे महेश, वृषभेश, प्रभो! जिनेश,
रक्षा करें मम, मुझे सुख दें विशेष ॥१॥

थे ज्ञानसागर गुरु मम प्राण प्यारे,
थे पूज्य साधुगण से बुध मुख्य न्यारे।
शास्त्रानुसार चलते, मुझको चलाते,
वंदूँ, उन्हें विनय से शिर को झुकाते ॥२॥

वाणी जिनेन्द्र-कथिता दुखहारिणी है,
संत्रस्त भव्य-जन को सुखदायिनी है।
तेरा करूँ स्तवन मैं अयि अम्बदेवी!
तो शीघ्र ही बन सकूँ निज आत्मसेवी ॥३॥

सम्बोधनार्थ निज को कुछ मैं लिखूँगा,
शुद्धोपयोग जिससे द्रुत पा सकूँगा।
सन्ताप, पाप सपने अपने तजूँगा,
तो वीतरागमय भाव सदा भजूँगा ॥४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

है जीव का अमिट जो उपयोग रूप,
होता वही त्रिविध है, जड़ से अनूप।
शुद्धोपयोग जब हो भव का वियोग,
दे स्वर्ग, मोक्ष क्रम बार शुभोपयोग ॥५॥

देता अतीव दुख है अशुभोपयोग,
ऐसा सदैव कहते बुध सन्त लोग।
सारे सुधी अशुभ को तज योग धारें,
पावें पवित्र पद को शिव को पधारें ॥६॥

मिथ्यात्व रूप वह है अशुभोपयोग,
सम्यक्त्व रूप यह सत्य शुभोपयोग।
संसार हो प्रथम से सहसा अनन्त,
दूजा परीत कर दे अयि देव सन्त! ॥७॥

संसार क्षार जल में वह है गिराता,
शुद्धोपयोग पय को यह है पिलाता।
रे! कालकूट इक है दुख दे नितान्त,
तो एक औषध समा सुख दे प्रशान्त ॥८॥

देही बने अशुभ से, भव में गुलाम,
विश्राम ही न मिलता, न मिले स्वधाम।
तो भी न मूढ़ यह भूल सुधारता है,
मोही न गूढ़ निज तत्त्व विचारता है ॥९॥

साधू सुधी धरम को उर धार ध्याता,
पाता पता परम का बनता विधाता।
अज्ञात जो सुचिर था वह ज्ञात होता,
जीता निजीय सुख को दुख सर्व खोता ॥१०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जो अन्य का परिचयी, निज का नहीं है,
होता सुखी न वह चूँकि परिग्रही है।
जो बार-बार पर को लख फूलता है,
संसार में भटकता वह भूलता है ॥११॥

जो जो सुखार्थ जड़ को जब हैं जुटाते,
पाते नहीं सुख कभी दुख ही उठाते।
क्या कूट भूस तृण को हम धान्य पाते,
अक्षुण्ण कार्य करते थक मात्र जाते ॥१२॥

विज्ञान को सहज ही निज में जगाना,
रे! हाट जाकर उसे न खरीद लाना।
तू चाहता यदि उसे अति शीघ्र पाना,
आना नहीं, भटकना न कहीं न जाना ॥१३॥

सीमा न है सहज की, वह है अनन्त,
ऐसे जिनेन्द्र कहते अरहन्त सन्त।
है ज्ञानगम्य, अतिरम्य, न शब्दगम्य,
तेजोमयी, अतुलनीय तथा अदम्य ॥१४॥

आकाश सादृश विशाल, विशुद्ध सत्ता,
योगी उसे निरखते वह बुद्धिमत्ता।
सत्यं शिवं परम सुन्दर भी वही है,
अन्यत्र छोड़ उसको सुख ही नहीं है ॥१५॥

लक्ष्मी मिले, मिलन हो, मम हो विवाह,
मूढ़ात्म को विषय की दिन-रैन चाह।
साधू न किन्तु पर में सुख को बताते,
क्या नीर के मथन से नवनीत पाते? ॥१६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तादात्म्य मान निज का जड़ देह साथ,
हा! हा! कदापि कर तू मत आत्मघात।
क्यों तू मुधा अमृत से निज पाद धोता,
धिक्कार व्यर्थ विष पीकर प्राण खोता ॥१७॥

साक्षात्कार प्रभु से जब लौं न होता,
संसारि-जीव तब लौं भव-बीच रोता।
पट्टी सु साफ करता नहीं घाव धोता,
कैसे उसे सुख मिले, दुख-बीज बोता ॥१८॥

स्वाधीनता, सरलता, समता, स्वभाव,
तो दीनता, कुटिलता, ममता, विभाव।
जो भी विभाव धरता, तजता स्वभाव,
तो डूबती उपलनाव नहीं बचाव ॥१९॥

तेरे लिये भव असम्भव! भव्य भावी,
होता न मोह तुझ पे यदि तीव्र हावी।
है मोह-भाव भव में सबको भ्रमाता,
निर्मोह भाव गह जीव बने प्रमाता ॥२०॥

जो जानते निज निरंजन ज्ञान को हैं,
औ आत्मलीन रहते तज मान को हैं।
हों प्राप्त क्यों न उनको सुर-सिद्धियाँ भी,
जावें जहाँ सुख मिले, मिलता वहाँ भी ॥२१॥

जो राग-द्वेष करते, धर नग्न भेष,
पाते जिनेश! वृषभेश! न सौख्य लेश।
ना मोक्ष मात्र कच-लुंचन-कर्म से हो,
साधू नहीं वसन-मुंचन मात्र से हो ॥२२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आनन्द-आत्म-रस का मुनि नित्य लेता,
होता वही अति सुखी, जिनशास्त्रवेत्ता।
तो रोष-तोष तजता, बनताऽरि-जेता,
क्रीड़ा करे सतत मुक्ति-रमा समेता ॥२३॥

मेरी खरी शरण है, सम शुद्ध आत्मा,
होते सुशीघ्र जिससे वसु कर्म खात्मा।
जो सत्य है, सहज है, निज है, सुधा है,
तृष्णा नहीं, न जिसको लगती क्षुधा है ॥२४॥

आकाश में कठिन पत्थर फेंक देना,
जैसा निजीय कर से शिर फोड़ लेना।
वैसा सदैव करता निज आत्मघात,
जो एकता समझता जड़ देह साथ ॥२५॥

नादान, दीन, मतिहीन, कुशील, मोही!
क्यों सार है कह रहा, जड़ देह को ही।
तू काँच में रम रहा, तज दिव्य हीरा !!
क्यों घास तू चर रहा, तज मिष्ट सीरा ॥२६॥

होती यदा सहज ही, निज की प्रतीति,
सारी तदा विनशती, रति, ईति, भीति।
है जागती, उछलती, निज नीति रीति,
तो छूटती न रहती, जड़ देह-प्रीति ॥२७॥

ज्योत्स्ना जगे, तम टले, नव चेतना है,
विज्ञान-सूरज छटा तब देखना है।
देखे जहाँ परम पावन है प्रकाश,
उल्लास, हास, सहसा लसता विलास ॥२८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मोही सदैव पर में सुख ढूँढ़ता है,
जो झूलता विषय में नित फूलता है।
पाता अतः नियम से मृग भाँति क्लांति,
स्वामी! नहीं दुख टले, मिलती न शान्ति ॥२९॥

ज्ञानी कभी न रखता पर की अपेक्षा,
शुद्धात्मलीन रहता, सब की उपेक्षा।
माला गले शिव-रमा फिर क्यों न डाले?
या पास क्यों न उसको सहसा बुला ले ॥३०॥

कारुण्य-भाव उर लाकर धार बोधी,
क्यों तू बना सुचिर से निजधर्म-द्रोही।
विश्वास तू धरम में कर, श्रेष्ठ सो ही,
विश्राम ले, अब जरा, तज मोह मोही ॥३१॥

ना बाल, लाल, न ललाम, न नील काला,
तू तो निराल, कल, निर्मल शील वाला।
तू शीघ्र बोधमय ज्योति शिखा जला ले,
अज्ञात को निरख ले, शिव सौख्य पाले ॥३२॥

रे मूढ़! तू जनमता, मरता अकेला,
कोई न साथ चलता, गुरु भी न चेला।
है स्वार्थपूर्ण यह निश्चय एक मेला,
जाते सभी बिछुड़ के जब अन्त बेला ॥३३॥

मैं कौन हूँ? किधर से अब आ रहा हूँ?
जाना कहाँ? इधर से जब जा रहा हूँ।
ऐसा विचार यदि तू करता न प्राणी,
कैसे तुझे फिर मिले वह मुक्ति-रानी? ॥३४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चक्री बने सुर बने तुम सार्वभौम,
पै अन्त में फल मिला, सुख का विलोम।
तो अग्नि में सहज शीतलता कहाँ है?
जो उष्णता धधकती रहती वहाँ है ॥३५॥

सत्ता नहीं जनमती उसका न नाश,
पर्याय का जनन केवल और ह्रास।
पर्याय है लहर, वारिधि सत्य-सत्ता,
ऐसा सदैव कहते, गुरुदेव वक्ता ॥३६॥

पर्याय को क्षणिक को लख मूढ़ रोता,
सामान्य को निरखता, बुध तुष्ट होता।
विज्ञान की विकलता दुख क्यों न देगी?
तृष्णा न क्षार जल से मिटती, बढ़ेगी !! ॥३७॥

दीवार है अमित औ अविरुद्ध द्वार,
क्यों हो प्रवेश निज में जब है विकार।
कैसे सुने जब कि अन्दर मुक्ति-नार,
जो आप बाहर खड़े, करते पुकार ॥३८॥

स्थायी निजीय सुख है, वह है असीम,
तो सौख्य ऐन्द्रियज है, दुख है, ससीम।
तू अन्तरंग, बहिरंग, निसंग होता,
तो शीघ्र दुःख टलता सुख सत्य जोता ॥३९॥

देखो! नदी प्रथम है निज को मिटाती,
खोती तभी, अमित-सागर रूप पाती।
व्यक्तित्व को, अहम को, मद को मिटा दे,
तू भी स्व को सहज में, प्रभु में मिला दे ॥४०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ये नाम, काम, धन-धाम, सभी विकार,
तू शीघ्र त्याग इनको, बन निर्विकार।
साकार हो फिर सभी तब जो विचार,
साक्षात्कार प्रभु से निज में विहार ॥४१॥

निस्सार जान तजते, बुध लोग भोग,
होते सुखी नियम से उर धार योग।
नीरोगता जब मिले, रहता न रोग,
होता सुयोग सुख का, दुख का वियोग ॥४२॥

अत्यन्त हर्ष सुख में, दुख में विषाद,
क्यों तू सदैव करता अति दीन-नाद।
लेता निजीय रस का तब लौं न स्वाद,
संसार में भटक तू जब लौं प्रमाद ॥४३॥

ना सम्पदा न विपदा रहती सदा है,
दोनों अहो! प्रवहमान, मृषा, मुधा है।
स्थायी नहीं क्षणिक जो मिटती उषा है,
काली वही तदुपरान्त घनी निशा है ॥४४॥

खाना खिला, जल पिला, तन को सुलाता,
तू देह की मलिनता, जल से धुलाता।
चिन्ता नहीं पर तुझे निज की अभी भी,
कैसे तुझे सुख मिले, न मिले कभी भी ॥४५॥

स्वादिष्ट है अशन तू इसको खिलाता,
घी, दूध औ सरस पेय तथा पिलाता।
तो भी सदा तृषित पीड़ित मात्र भूखा,
रे मूढ़ ! कार्य तव है कितना अनूखा ॥४६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आत्मा रहा, रह रहा, चिर औ रहेगा,
कोई कदापि उसको न मिटा सकेगा।
विश्वास ईदृश न हो अयि भव्य लोगो!
सारे अरे! सुचिर दुस्सह दुःख भोगो ॥४७॥

है आँख का विषय पुद्गल-पिंड मात्र,
ऐसा मुनीश कहते, यह सत्य शास्त्र।
आत्मा अमूर्त नित है, वह ज्ञानगम्य,
चैतन्य-सौध सुख-धाम न चक्षुगम्य ॥४८॥

क्या हो गया समझ में मुझको न आता,
क्यों बार-बार मन बाहर दौड़ जाता।
स्वाध्याय, ध्यान करके मन रोध पाता,
पै श्वान सा मन सदा मल शोध लाता ॥४९॥

होता सुखी स्व-पर बोध बिना न जीव,
रोता सदीव, दुख को सहता अतीव।
स्वामी! प्रणाम मम हो उसको अनन्त,
पीड़ा मिटे, बल मिले जिससे ज्वलन्त ॥५०॥

धोखा दिया स्वयं को अब लौं अवश्य,
जाना गया न हमसे निज का रहस्य।
ऐसी दशा जब रही सबकी हमारी,
तो क्यों हमें वह वरे वर मुक्ति-नारी ॥५१॥

तू कौन है? विदित है? कुछ है पता भी,
क्यों मौन है? स्मरण है निज की कथा भी?
तू जानता न निज को, न सुखी बनेगा,
संसार दुःख सहता, भ्रमता फिरेगा ॥५२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तू बार-बार मरता, तन धार-धार,
पीड़ा अतः सह रहा, उसका न पार।
जो भोग-लीन रहता, तज आत्म-ध्यान,
होता नहीं वह सुखी अयि भव्य ! जान ॥५३॥

विज्ञानमूल यह है, सुख वैभवों का,
होता विनाश वह दुःख कई भवों का।
भानू उगे, तम टले, उजला प्रभात,
उल्लास, हास, सहसा सुख एक साथ ॥५४॥

आधार सत्य सुख का जब आत्मा है,
तू क्यों भला भ्रमित हो पर में रमा है।
ज्ञानी कभी न तुझसे पर में रमेंगे,
साधू कभी न भव-कानन में भ्रमेंगे ॥५५॥

शुद्धात्म का न यदि संस्तव तू करेगा,
आनन्द का न झरना तुझमें झरेगा।
संसार में जनम ले कब लौं मरेगा,
तू देह का वहन तो कब लौं करेगा ॥५६॥

जो भी यहाँ जगत में कुछ दृश्यमान,
स्थायी नहीं वह सभी, क्षण नश्यमान।
क्या जान, मान मन ! तू करताऽतिमान,
क्यों तू वृथा नित व्यथा सहता महान ॥५७॥

ना नारकी, न नर, वानर मैं न नारी,
हूँ निर्विकार पर निर्मल बोधधारी।
आदर्श सादृश विशुद्ध स्वभाव मेरा,
मेरा नहीं जड़मयी यह देह डेरा ॥५८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मेरी खरी, सुखकरी रमणी क्षमा है,
शोभावती, भगवती जननी प्रमा है।
मैं बार-बार निज को करता प्रणाम,
आनन्द नित्य फिर तो दुख का न नाम ॥५९॥

ब्रह्मा, महेश, शिव मैं, मम नाम 'राम'
मेरा विराम मुझमें, मुझ में न काम।
ऐसा विवेक मुझको अधुना हुआ है,
सौभाग्य से सहज द्वार अहो! खुला है ॥६०॥

माता, पिता, सुत, सुता, वनिता व भ्राता,
मेरे न ये, न मम है इन संग नाता।
मैं एक हूँ पृथक हूँ सबसे सदा से,
मैं शुद्ध हूँ भरित-बोधमयी सुधा से ॥६१॥

दारा नहीं शरण है, मन मोहिनी है,
देती अतीव दुख है, भववर्धिनी है।
संसार-कानन जहाँ वह सर्पिणी है,
मायाविनी अशुचि है, कलिकारिणी है ॥६२॥

काले घने जलद के दल डोलते हैं,
जो व्योम में ''गड़गड़ाहट बोलते हैं।
पै मौन मेरु सम वे ऋषि लोग सारे,
शुद्धात्म चिन्तन करें, निज को निहारें ॥६३॥

वर्षा घनी, मुसल-धार, अपार नीर,
योगी खड़े स्थिर, दिगम्बर है शरीर।
आश्चर्य पै न उनके मुख पै विकार,
पीड़ा व्यथा, दुख नहीं समता अपार ॥६४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जो बीच, बीच बिजली, पल आयुवाली,
ज्योतिर्मयी चमकती, मिटती प्रणाली।
विस्तार है तिमिर का वन में तथापि,
आलोक को निरखते मुनि वे अपापी ॥६५॥

तीव्रातितीव्र चलती अति शीत-वाय,
तो झांय-झांय करते तरु सांय-सांय।
लाते न किन्तु मुनि वे मन में कषाय,
पाते अतः सुख सही, बनते अकाय ॥६६॥

सारी धरा जलमयी नभ मेघमाला,
भानू हुआ उदित हो, पर ना उजाला।
ऐसी भयानक दशा फिर भी स्व-लीन,
वे धन्य हैं, अभय हैं, मुनि जो प्रवीन ॥६७॥

हेमंत में हिममयी हिम से मही है,
दाहात्मिका किरण भास्कर की नहीं है।
तो भी परीषहजयी ऋषिराज सारे,
निर्ग्रन्थ हो करत ध्यान नदी-किनारे ॥६८॥

निश्चिन्त हो, निडर, निश्चल हो विनीत,
योगी रहे स्वयम में, यह भव्य रीत।
वे प्रेम से, विनय से, निज-गीत गाते,
चांचल्य चित्त तब ही, द्रुत जीत पाते ॥६९॥

छाया नहीं विपिन में, गरमी घनी है,
तेजोमयी अरुण की किरणें तनी हैं॥
पै योग धार, जड़ काय सुखा रहे हैं,
ज्ञानी तभी, अघ कषाय घटा रहे हैं ॥७०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सत्यार्थ देव गुरु आगम की सुसेव,
आलस्य त्याग मुनि वे करते सदैव।
इच्छा नहीं विषय की रखते कदापी,
संभोग लीन रहते, जग मात्र पापी ॥७१॥

अत्यन्त लू चल रही, नभ धूल फैली,
है स्वेद से लथपथी मुनि-देह मैली।
है ध्यानलीन सब तापस वे तथापि,
निष्कम्प मेरु सम, ना डरते कदापि ॥७२॥

संतप्त है तपन-आतप से शिलाएँ,
सूखे हुए सरित हैं सब वाटिकाएँ।
देखो! तथापि तपते गिरि पै तपस्वी,
जो पाप, ताप तजते बनते यशस्वी ॥७३॥

निन्दा करें, स्तुति करें, तलवार मारें,
या आरती मणिमयी सहसा उतारें।
साधू तथापि मन में समभाव धारें,
वैरी सहोदर जिन्हें इकसार सारे ॥७४॥

जो जानते भवन को वन को समान,
वे पूजनीय भजनीय अहो! महान।
दुर्गन्ध से न करते बुध-लोग ग्लान,
तो फूलते न सुख में, दुख में न म्लान ॥७५॥

जो आत्मध्यान करते, करते न मान,
मानापमान जिनको सब हैं समान।
प्रत्यक्ष ज्ञान गहते, भव पार जाते,
वे सिद्ध लौट न कभी भव-बीच आते ॥७६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जो रोष तोष तज के रहते विराग,
औ भोग को समझते विष - कृष्ण नाग।
वे ही विभो! विमल केवल बोध पाते,
रागी रहे सब दुखी, उर क्रोध लाते ॥७७॥

है वीतराग पथ जो न जिसे सुहाता,
निर्भ्रान्त चोर वह दुष्ट, कुधी कहाता।
जाता अतः नरक में अति दुःख पाता,
कालुष्य-भाव भव में उसको सताता ॥७८॥

सच्चा वही धरम है जिसमें न हिंसा,
होगी नहीं वचन से उसकी प्रशंसा।
आधार मात्र उसका यदि भव्य लेता,
संसार पार करता, बनताऽरिजेता ॥७९॥

कोई पदार्थ जग में न बुरे न अच्छे,
ऐसा सदैव जैन कहते, गुरुदेव सच्चे।
साधू अतः न करते रति, राग, द्वेष,
नीराग-भाव धरते, धरते न क्लेश ॥८०॥

योगी स्वधाम तज बाहर भूल आता,
सद्ध्यान से स्खलित हो अति कष्ट पाता।
तालाब से निकल बाहर मीन आता,
होता दुखी तड़पता, मर शीघ्र जाता ॥८१॥

ज्ञानी कभी मरण से डरते नहीं हैं,
तो चाहते सुचिर जीवन भी नहीं हैं।
वे मानते, मरण-जीवन देह के हैं,
ऐसा निरंतर सुचिन्तन रे ! करे हैं ॥८२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दीक्षा लिये बहुत वर्ष हमें हुए हैं,
शास्त्रानुसार हमने तप भी किये हैं।
इत्थं प्रमत्त मुनि हो, मद जो दिखाते,
वे धर्म से सरकते अति दूर जाते ॥८३॥

जो आपको समझते सबसे बड़े हैं,
वे धर्म से बहुत दूर अभी खड़े हैं।
मिथ्याभिमान करना सबसे बुरा है,
स्वामी! अतः न मिलता, सुख जो खरा है ॥८४॥

मानाभिभूत मुनि, आतम को न जाने,
तो वीतराग प्रभु को वह क्या पिछाने।
जो ख्याति, लाभ, निज पूजन चाहता है,
ओ! पाप का वहन ही करता वृथा है ॥८५॥

तूने किया विगत में कुछ पुण्य-पाप,
जो आ रहा उदय में स्वयमेव आप।
होगा न बन्ध तब लौं, जब लौं न राग,
चिन्ता नहीं उदय से, बन वीतराग ! ॥८६॥

तू बन्ध हेतु उदयागत कर्म को ही,
है मानता यदि, कदापि न मोक्ष होगी।
संसार का विलय हो न विधि-व्यवस्था,
तो कौन सी फिर तदा तब हो अवस्था ॥८७॥

आता यदा उदय में वह कर्म साता,
प्रायः त्वकीय मुख पै सुख-दर्प छाता।
सिद्धान्त का इसलिए तुझको न ज्ञान,
तू स्वप्न को समझता असली प्रमाण ॥८८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

देती नहीं दुख कभी वह जो असाता,
साता, असात इनसे तव है न नाता।
ना जानते-समझते, जड़ तो रहे हैं,
संवेदना न उनमें, उससे परे हैं ॥८९॥

तू धर्म-धर्म कहता, उसका न मर्म
है जानता, फिर मिले, किस भाँति शर्म।
क्या धर्म है? विदित है न तुझे अभी भी,
तो क्यों मिले शिव तुझे, न मिले कभी भी ॥९०॥

सद्बोध-भानु जब लौं उगता नहीं है,
आशा-निशा न नशती, तब लौं वही है।
ज्ञानी अतः निरखते, सब को सही हैं,
होते नहीं स्खलित वे गिरते नहीं हैं ॥९१॥

हो जाय, राग यदि आतम का स्वभाव,
ना मोक्ष तत्त्व रहता सुख का अभाव।
तो विश्व का वितथ हो पुरुषार्थ सारा,
क्यों आयेगा फिर प्रभो! भव का किनारा ॥९२॥

ना मूढ़ता, विषमता, खलता दिखाती,
मिथ्यात्व और जब निन्द्य कषाय जाती।
आत्मा अहो! स्वयम को लखता तदा है,
पाता सहर्ष अविनश्वर संपदा है ॥९३॥

ना अंग-संग मम निश्चय नित्य नाता,
ऐसा निरंतर अहो! समदृष्टि गाता।
औचित्य है, जब मिले, वह मुक्ति राह,
तो देह से न ममता कुछ भी न चाह ॥९४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जो भद्र भव्य, भव से भयभीत होता,
वैराग्य भाव तब है स्वयमेव ढोता।
संसार सागर असार अपार क्षार,
यों बार-बार करता मन में विचार ॥९५॥

विद्रोह, मोह, निज देह सनेह छोड़ो,
औ मान के, मदन के सब दाँत तोड़ो।
सम्बन्ध मोक्षपथ से अनिवार्य जोड़ो,
तो आपको नमन हो मम जो करोड़ो ॥९६॥

ना आधि-व्याधि मुझमें, न उपाधियाँ हैं,
मेरा न है मरण, ये जड़ पंक्तियाँ हैं।
मैं शुद्ध चेतन-निकेतन हूँ निराला,
आलोक-सागर, अतः समदृष्टि वाला ॥९७॥

मिथ्या दिशा पकड़ के जब तू चलेगा,
गन्तव्य थान तुझको न कभी मिलेगा।
कैसे मिले, सुख भले, दुख क्यों टलेगा,
रागाग्नि से जल रहा, चिर औ जलेगा ॥९८॥

स्वात्मानुभूति-सर में करता न स्नान,
कालुष्य-कालिख कभी न धुले सुजान।
क्यों व्यर्थ ही विषय कर्दम में फँसा है,
भाई वहाँ सुख नहीं, वह तो मृषा है ॥९९॥

निस्सार भोग जब हैं यश कीर्ति सर्व,
तो क्यों करें सुबुध लोग वृथैव गर्व।
वे निर्विकार बन के, तज के विकार,
निश्चिन्त होकर करें निज में विहार ॥१००॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

प्रत्येक काल उठता, मिटता पदार्थ,
है ध्रौव्य भी प्रवहमान वही यथार्थ।
योगी उसे समझते लखते सदीव,
आनन्द काऽनुभव वे करते अतीव ॥१०१॥

स्वामी! 'निजानुभव' नामक काव्य प्यारा,
कल्याण-खान, भवनाशक श्राव्य न्यारा।
जो भी इसे विनय से पढ़, आत्म ध्यावे,
'विद्यादिसागर' बने, शिवसौख्य पावे ॥१०२॥

स्थान एवं समय परिचय

अजयमेर के पास है ब्यावर नगर महान।
धारा वर्षायोग को ध्येय स्व-पर कल्याण ॥१०३॥

नव नव चउ द्वय वर्ष की सुगन्ध दशमी आज।
लिखा गया यह ग्रन्थ है, निजानन्द के काज ॥१०४॥

अंकानां वामतो गतिः अनुसार, सुगन्ध दशमी
वी.नि.सं.२४९९, ७.९.७३ ब्यावर अजमेर

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मुक्तक शतक

निगोद में रचा पचा,
कोई भी भव न बचा,
तथापि सुख का न शोध
हुआ रहा मैं अबोध॥१॥

प्रभो! सुकृत उदित हुआ,
फलतः मैं मनुज हुआ,
दुर्लभ सत्संग मिला,
मानो यही सिद्धशिला॥२॥

फिर गुरु उपदेश सुना,
जागृत हुआ सुन गुना,
ज्ञात हुआ स्व - पर भेद,
व्यर्थ करता था खेद॥३॥

विदित हुआ मैं चेतन,
ज्ञान-गुण का निकेतन,
किन्तु तन, मन अचेतन,
जिन्हें न निज का सम्वेदन॥४॥

चेत चेतन चकित हो,
स्वचिन्तन वश मुदित हो,
यों कहता मैं भूला,
अब तक पर में फूला॥५॥

अब सर्वत्र उजाला,
शिव-पथ मिला निराला,
किस बात का मुझे डर,
जब जा रहा स्वीय घर॥६॥

यह है समकित प्रभात,
न रही अब मोह रात,
बोध-रवि-किरण फूटी,
टली भ्रम-निशा झूठी॥७॥

समता अरुणिमा बढ़ी,
उन्नत शिखर पर चढ़ी,
निज-दृष्टि निज में गड़ी,
धन्यतम है यह घड़ी॥८॥

अनुकम्पा - पवन भला
सुखद पावन बह चला,
विषमता-कण्टक नहीं,
शिव-पथ अब स्वच्छ सही ॥९॥

यह सुख की परिभाषा,
रहे न मन में आशा,
ऐसी हो प्रतिभासा,
परितः पूर्ण प्रकाशा॥१०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

कुछ नहीं अब परवाह,
जब मिटी सब कुछ चाह,
दुख टला, निज-सुख मिला,
मम उर दृगपद्म खिला॥११॥

विद्या अविद्या छोड़
कषाय कुम्भ को फोड़
कर सदा उससे प्यार,
जो है सत्चेतना नार ॥१२॥

मुनि वशी निरभिमानी,
निरत निज में विज्ञानी,
जिसे नहिं निज का ज्ञान,
वह करता मुधा मान॥१३॥

सुन-सुन मानापमान,
दुखदायक अध्यवसान,
सुधी बस उन्हें तजकर,
निजानुभव करें सुखकर॥१४॥

विषय-कषाय वश सदा,
दुःख सहता मूढ़ मुधा,
निज निजानुभव का स्वाद,
बुधजन लेते अबाध॥१५॥

यह योगी का विचार,
हैं ज्ञान के भण्डार,
सभी संसारी जीव,
द्रव्य-दृष्टि से सदीव॥१६॥

रखें नहिं सुधी परिग्रह,
करें सदा गुण-संग्रह,
नमें निज निरंजन को,
तजें विषय-रंजन को॥१७॥

पर-परिणति को लखकर,
जड़मति बिलख-हरख कर।
कर्मों से है बंधता,
वृथा भव-वन भटकता॥१८॥

मुनि ज्ञानी का विश्वास,
मम हो न कभी विनाश,
और हूँ नहीं रोगी,
फिर व्यथा किसे होगी॥१९॥

मैं वृद्ध, युवा न बाल,
ये हैं जड़ के बबाल,
इस विध सुधी जानता,
सहज निज सुख साधता॥२०॥

पुष्पहार से नहिं तोष,
करे न विषधर से रोष,
पीता निशिदिन ज्ञानी
शुचिमय समरस पानी॥२१॥

अबला सबला नहिं नर,
ना मैं नपुंसक वानर।
नहिं हृष्ट, पुष्ट, कुरूप,
हूँ इन्द्रियातीत अरूप॥२२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ललित लता सी जाया,
है संध्या की छाया।
औ सुभग यह काया,
केवल जड़ की माया॥२३॥

पावन ज्ञान-धन-धाम,
अनन्त गुणों का ग्राम।
स्फटिक सम निर्विकार,
नित निज में मम विहार॥२४॥

पर-द्रव्य पर अधिकार,
नहिं हो इस विध विचार,
जानना तेरा काम,
कर तू निज में विश्राम॥२५॥

योग-मार्ग बहुत सरल,
भोगमार्ग निश्चय, गरल।
स्वानुभवामृत तज कर,
विषय-विष-पान मत कर॥२६॥

क्यों भटकता तू मुधा,
क्यों दुख सहता बहुधा।
तब मिटेगी यह क्षुधा
जब मिलेगी निज सुधा॥२७॥

क्यों बनता तू बावला,
सोच अब निज का भला।
यह मनुज में ही कला,
अतः उर में समभाव ला॥२८॥

यदि पर संग सम्बन्ध,
रखता, तो करम बन्ध,
फिर भवकूल, किनारा,
न मिले तुझे सहारा॥२९॥

परन्तु मूढ़ भूल कर,
स्व को नहिं मूल्य कर।
पर को हि अपना रहा,
मृषा दुःख उठा रहा॥३०॥

तू तजकर मोह-तृपा
अरे! कर निज पर कृपा।
होगा न सुखी अन्यथा,
यह बात सत्य सर्वथा॥३१॥

अरे! लक्ष्यहीन तव प्रवास,
तुझको दे रहा त्रास।
मति सुधारनी होगी,
चाल बदलनी होगी॥३२॥

राग नहीं मम स्वभाव,
द्वेष है विकार भाव।
यों समझ उनको त्याग,
बन जिन-सम वीतराग ॥३३॥

कर अब आतम अनुभव,
फलतः हो सुख सम्भव।
मिट जाये दुख सारा,
मिल जाये शिव प्यारा॥३४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दृग-विद्या-व्रत, रत्नत्रय।
करे प्रकाशित जगत्त्रय।
जो इनका ले आश्रय,
अमर बनता है अभय॥३५॥

आत्मा कभी न घटता,
मिटता, कभी न बढ़ता।
परन्तु खेद, यह बात,
मूढ़ को नहिं है ज्ञात॥३६॥

मूढ़ गूढ़ स्वतत्त्व भूल,
पर में दिन-रात फूल।
दुःख का वह सूत्रपात,
कर रहा निज का घात॥३७॥

मुख से निकले न बोल,
मन में अनेक कल्लोल।
नित मूर्ख करता रोष,
निन्द्यतम अघ का कोष॥३८॥

स्मरण-शक्ति चली गई,
लोचन-ज्योति भी गई।
पर जिसकी विषय-चाह
भभक-भभक उठी दाह॥३९॥

देह जरा-वश जर्जरित,
हुआ मुख-कमल मुकुलित।
तथा समस्त मस्तक पलित,
जड़ की तृष्णा द्विगुणित॥४०॥

यह सब जड़ का बबाल,
मैं तो नियमित निहाल।
जिसको पर विदित नहीं
कि यह मम परिणति नहीं॥४१॥

मोह-कर्दम में फँसा,
उल्टी मूढ़ की दशा।
रखता न स्व-पर विवेक,
सहता कष्टातिरेक॥४२॥

है स्व-पर की पहिचान,
शिवसदन का सोपान।
पर को अपना कहना,
केवल भव-दुःख सहना॥४३॥

यदि हो स्व-पर बोध,
फिर उठे नहिं उर-क्रोध।
मूर्ख ही क्रोध करता,
पुनि-पुनि तन गह मरता॥४४॥

जब हो आत्मानुभूति,
निश्चिन्त सुख की प्रसूति,
मिलती सहज चिन्मूर्ति,
द्युतिमय शुचिमय विभूति॥४५॥

स्वयं से परिचित नहीं,
भटकता भव में वही।
पग-पग दुःख उठाता,
पाप-परिपाक पाता॥४६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विद्या बिन, चारित्र वृथा,
जिससे न मिटती व्यथा।
फिर सहज शुद्ध समयसार,
क्यों मिले फिर विश्वास॥४७॥

कभी मिला सुर-विलास,
तो कभी नरक-निवास
पुण्य-पाप का परिणाम,
न कभी मिलता विश्राम॥४८॥

मूढ़ पाप से डरता,
अतः पुण्य सदा करता।
तो संसार बढ़ाता,
भव-वन चक्कर खाता॥४९॥

पाप तज पुण्य करोगे,
तो क्या नहीं मरोगे।
भले हि स्वर्ग मिलेगा,
भव-दुख नहीं मिटेगा॥५०॥

प्रवृत्ति का फल संसार,
निवृत्ति सुख का भण्डार।
पहली अहो पराश्रिता,
दूजी पूज्य निजाश्रिता॥५१॥

मत बन किसी का दास,
पर बन, पर से उदास।
फलतः कर्मों का नाश,
उदित हो बोध-प्रकाश॥५२॥

अतः मेरा सौभाग्य,
मुझको हुआ वैराग्य।
पुण्य-पाप है नश्वर,
शुद्धातम वर ईश्वर॥५३॥

सुख-दुख में समान मुख,
रहे तब मिले शिव-सुख।
अन्यथा बस दुस्सह दुख,
ऊर्ध्व, अधो, पार्श्व, सम्मुख॥५४॥

स्नान स्वानुभव सर में,
यदि हो, तो पल भर में।
तन-मन निर्मलतम बने,
अमर बने मोद घने॥५५॥

सब पर भव-परम्परा,
यों लख तू स्वयं जरा।
निज में धन अमित भरा,
जो है अविनश्वर और खरा॥५६॥

आलोकित लोकालोक,
करता नहीं आलोक।
जो तुझमें अव्यक्त रूप,
व्यक्त हो, तो सुख अनूप॥५७॥

क्यों करता व्यर्थ शोक,
निज को जान, मन रोक।
बाहर दिखती पर्याय,
आभ्यन्तर द्रव्य सुहाय॥५८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विद्या-रथ पर बैठकर,
मनोवेग निरोध कर।
अब शिवपुर है जाना,
लौट कभी नहिं आना॥५९॥

झर-झर झरता झरना,
कहता चल-चल चलना।
उस सत्ता से मिलना,
पुनि-पुनि पड़े न चलना॥६०॥

लता पर मुकुलित कली,
कभी-कभी खुली, खिली।
कभी गिरी, परी मिली,
सब में वही सत् ढली॥६१॥

सकल पदार्थ अबाधित,
पल-पल तरल प्रवाहित।
होकर भी ध्रुव त्रिकाल,
जीवित शाश्वत निहाल॥६२॥

रवि से जब, जल जलता,
वही वाष्प में ढलता।
जलद बन, पुनि पिघलता,
सतत है सत् बदलता॥६३॥

गुण वश प्रभु, तुम-हम सम,
पर पृथक्, हम भिन्नतम।
दर्पण में कब दर्पण,
करता निजपन अर्पण॥६४॥

राम-राम, श्याम-श्याम,
इस रटन से विश्राम।
रहे न काम से काम,
बन जाऊँ मैं निष्काम॥६५॥

क्षणिक सत्ता को मिटा,
महासत्ता में मिला।
आर-पार तदाकार,
निराकार मात्र सार॥६६॥

मन पर लगा लगाम,
निज दीप जला ललाम।
सकल परमार्थ पदार्थ,
प्रतिभासित हो यथार्थ॥६७॥

बन्द कर नयन-पुट को,
लखता अन्तर्घट को।
दिखती फैली लाली,
न निशा मैली काली॥६८॥

इच्छा नहिं कि कुछ लिखूँ,
जड़ार्थ मुनि हो बिकूँ।
जो कुछ होता लखना,
लेखक बन नहिं लिखना॥६९॥

स्मृति में कुछ भी लाना,
ज्ञान को बस सताना।
लेखनी लिखती रहे,
आत्मा लखती रहे॥७०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दृग, चरण गुण अनमोल,
निस्पन्द अचल अलोल।
मत इन्हें जड़ पर तोल,
अमृत में विष मत घोल॥७१॥

अमूर्त की मृदुता में
सिमिट-सिमिट रहता मैं।
धवल कमल की मृदुता,
नहिं रुचती अब जड़ता॥७२॥

सरस-विरस से ऊपर,
उठकर, रसगुण चखकर।
मम रसना जीवित है,
प्रमुदित उन्मीलित है॥७३॥

लाल-लाल युगलगाल,
साम्य के सरस रसाल।
चूस-चूस तुष्ट हुई,
रसना सम्पुष्ट हुई॥७४॥

मति-मती मम नासिका,
ध्रुव गुण की उपासिका।
न दुर्गन्ध-सुगन्ध से,
प्रभावित है गन्ध से॥७५॥

रूप विरूप को लखा,
चिर तृषित नयनों चखा।
पर अनुपम रूप यहाँ,
जग में सुख-कूप कहाँ?॥७६॥

सप्त-स्वरों से अतीत,
सुन रहा हूँ संगीत।
मनो वीणा का तार,
तुन-तुन ध्वनित अपार॥७७॥

अमूर्त के आकाश में,
विलीन ज्यों प्रकाश में।
प्रकाश नाश विकास में,
सत् चिन्मय विलास में॥७८॥

आलोक की इक किरण,
पर्याप्त चलते चरण।
पथिक! सुदूर भले ही,
गन्तव्य पर मिले ही॥७९॥

आसीन सहज मानस,
तट पर यह मम मानस।
हंस सानन्द क्रीड़ा,
कर रहा भूल पीड़ा॥८०॥

विगत सब विस्मरण में,
अनागत कब मरण में-
ढल चुका, विदित नहिं है,
स्व-संवेदन बस यही है॥८१॥

विमल समकित विहंगम,
दृश्य का हुआ संगम।
नयनों में हृदयंगम,
किया मम मन विहंगम॥८२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

समकित सुमन की महक,
गुण-विहंगम की चहक।
मिली, साम्य उपवन में,
नहिं! नहिं! नन्दन वन में॥८३॥

भय नहीं विषय-विष से,
नहिं प्रीति पीयूष से।
अजर अमर अविनाशी,
हूँ चूँकि ध्रुव विकासी॥८४॥

हर सत् में अवगाहित,
हूँ प्रतिष्ठित अबाधित।
समर्पित सम्मिलित हूँ,
हूँ तभी शुचि मुदित हूँ॥८५॥

ज्ञात तथ्य सत्य हुआ,
जीवन कृत्कृत्य हुआ।
हुआ आनन्द अपार,
हुआ वसन्त संचार॥८६॥

फलतः परितः प्लावित,
पुलकित पुष्पित फुल्लित।
मृदु शुचि चेतन - लतिका,
गा रही गुण-गीतिका॥८७॥

जलद की कुछ पीलिमा,
मिश्रित सघन नीलिमा।
चीर, तरुण अरुण भाँति,
बोध-रवि मिटा भ्रान्ति॥८८॥

हुआ जब से वह उदित,
खिली लहलहा प्रमुदित।
सचेतना सरोजिनी,
मोदिनी मनमोहिनी॥८९॥

उद्योत इन्दु प्रभु सिन्धु,
खद्योत मैं लघु बिन्दु।
तुम जानते सकल को,
मैं स्व-पर के शकल को॥९०॥

मैं पराश्रित, निजाश्रित,
तुम हो, पै तुम आश्रित-
हो, यह रहस्य सूँघा,
सम्प्रति अवश्य गूंगा॥९१॥

प्रकृति से ही रही प्रकृति
भोग्या जड़मती कृति।
भोक्ता पुरुष सनातन
नव-नवीन अधुनातन॥९२॥

पुरुष पुरुष से न प्रभावित,
हुआ प्रकृति से बाधित।
हुआ, पुरुषार्थ वंचित,
विवेक रखे न किंचित्॥९३॥

रहा प्रकृति से सुमेल,
रखता, खेलता खेल।
स्वभाव से दूर रहा,
विभाव से पूर रहा॥९४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सुधाकर सम सदा से,
पूरित बोध-सुधा से।
होकर भी राग केतू,
भरित है चित् सुधा से तू॥९५॥

उस ओर मौन तोड़ा,
विवाद से मन जोड़ा।
पुरुष नहीं बोलेंगे,
मौन नहीं खोलेंगे॥९६॥

प्रमाद की इन तानें-
बानें सुन सम ताने।
मौन मुझे जब लखकर,
चिड़कर खुलकर मुड़कर॥९७॥

प्रेम क्षेत्र में अब तक,
चला किन्तु यह कब तक।
मेरे साथ ए नाथ!
होगा विश्वासघात॥९८॥

समता से मम ममता,
जब से तन क्षमता।
अनन्त ज्वलन्त प्रकटी,
प्रमाद-प्रमदा पलटी॥९९॥

कुछ-कुछ रिपुता रखती,
रहती मुझको लखती।
अरुचिकर दृष्टि ऐसी,
प्रेमी आप ! प्रेयसी॥१००॥

मुझ पर हुआ पविपात',
कि आपद माथ, गात।
विकल पीड़ित दिन - रात,
चेतन जड़ एक साथ॥१०१॥

अब चिरकाल अकेली,
पुरुष के साथ केली।
पिलापिला अमृतधार,
मिला मिला सस्मित प्यार॥
करूँगी खुश करूँगी,
उन्हें जीवित नित लखूँगी॥१०२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दोहा स्तुति शतक

मंगलाचरण

शुद्ध भाव से नमन हो शुद्धभाव के काज।
स्मरो, स्मरूँ नित थुति करूँ उर में करूँ विराज ॥१॥

अगार गुण के गुरु रहे, अगरु गन्ध अनगार।
पार पहुँचने नित नमूँ, प्रणाम बारम्बार ॥२॥

नमूँ भारती भ्रम मिटे, ब्रह्म बनूँ मैं बाल।
भार रहित भारत बने, भास्वत भारत भाल ॥३॥

श्री आदिनाथ भगवान

आदिम तीर्थंकर प्रभु, आदिनाथ मुनिनाथ।
आधि व्याधि अघ मद मिटे, तुम पद में मम माथ ॥४॥

वृष का होता अर्थ है, दयामयी शुभ धर्म।
वृष से तुम भरपूर हो, वृष से मिटते कर्म ॥५॥

दीनों के दुर्दिन मिटें, तुम दिनकर को देख।
सोया जीवन जागता, मिटता अघ अविवेक ॥६॥

शरण चरण हैं आपके, तारण तरण जहाज।
भवदधि तट तक ले चलो, करुणाकर जिनराज ॥७॥

श्री अजितनाथ भगवान

हार जीत से हो परे, हो अपने में आप।
विहार करते अजित हो, यथा नाम गुण छाप ॥८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पुण्य पुंज हो पर नहीं पुण्य फलों में लीन।
पर पर पामर भ्रमित हो, पल-पल पर आधीन ॥९॥

जित इन्द्रिय जित मद बनें जितभव विजित कषाय।
अजितनाथ को नित नमूँ अर्जित दुरित पलाय ॥१०॥

कोंपल पल-पल को पले, वन में ऋतुपति आय।
पुलकित मम जीवन लता, मन में जिनपद पाय ॥११॥

श्री संभवनाथ भगवान

भव-भव भव-वन भ्रमित हो, भ्रमता-भ्रमता आज।
संभव जिन भव शिव मिले, पूर्ण हुआ मम काज ॥१२॥

क्षण-क्षण मिटते द्रव्य हैं, पर्यय वश अविराम।
चिर से हैं चिर ये रहें, स्वभाव वश अभिराम ॥१३॥

परमार्थ का कथन यूँ, मंथन किया स्वयमेव।
यतिपन पालें यतन से, नियमित यदि हो देव ॥१४॥

तुम पद पंकज से प्रभु, झर-झर झरी पराग।
जब तक शिव सुख ना मिले, पीऊँ षट्पद जाग ॥१५॥

श्री अभिनन्दननाथ भगवान

गुण का अभिनन्दन करो, करो कर्म की हानि।
गुरु कहते गुण गौण हो, किस विध सुख हो प्राणि ॥१६॥

चेतन वश तन शिव बने, शिव बिन तन शव होय।
शिव की पूजा बुध करें, जड़ जन शव पर रोय॥१७॥

विषयों को विष लख तजूँ, बनकर विषयातीत।
विषय बना ऋषि ईश को, गाऊँ उनका गीत ॥१८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

गुणधारें पर मद नहीं, मृदुतम हो नवनीत।
अभिनन्दन जिन! नित नमूँ मुनि बन मैं भवभीत ॥१९॥

श्री सुमतिनाथ भगवान

बचूँ अहित से हित करूँ, पर न लगा हित हाथ।
अहित साथ ना छोड़ता, कष्ट सहूँ दिन रात ॥२०॥

बिगड़ी धरती सुधरती, मति से मिलता स्वर्ग।
चारों-गतियाँ बिगड़तीं, पा अघ मति संसर्ग ॥२१॥

सुमतिनाथ प्रभु सुमति दो, मम मति है अतिमंद।
बोध कली खुल-खिल उठे, महक उठे मकरन्द ॥२२॥

तुम जिन मेघ, मयूर मैं, गरजो बरसो नाथ।
चिर प्रतीक्षित हूँ खड़ा, ऊपर करके माथ ॥२३॥

श्री पद्मप्रभ भगवान

निरी छटा ले तुम छठे, तीर्थकरों में आप।
निवास लक्ष्मी के बने, रहित पाप संताप ॥२४॥

हीरा-मोती पद्म ना, चाहूँ तुमसे नाथ।
तुम सा तम-तामस मिटा, सुखमय बनूँ प्रभात ॥२५॥

शुभ्र सरल तुम बाल, तव कुटिल कृष्ण तम नाग।
तव चिति चित्रित ज्ञेय से, किन्तु न उसमें दाग ॥२६॥

विराग पद्मप्रभ आपके, दोनों पाद सराग।
रागी मम मन जा वहीं, पीता तभी पराग ॥२७॥

श्री सुपार्श्वनाथ भगवान

यथा सुधाकर खुद सुधा, बरसाता बिन स्वार्थ।
धर्मामृत बरसा दिया, मिटा जगत का आर्त ॥२८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दाता देते दान हैं, बदले की ना चाह।
चाह दाह से दूर हो, बड़े-बड़ों की राह ॥२९॥

अबंध भाते काट के, वसु विध विधि का बंध।
सुपार्श्व प्रभु निज प्रभुपना, पा पाये आनन्द ॥३०॥

बाँध-बाँध विधि बन्ध मैं, अन्ध बना मतिमन्द।
ऐसा बल दो अंध को, बन्धन तोडूँ द्वन्द्व ॥३१॥

श्री चन्द्रप्रभ भगवान

सहन कहाँ तक अब करूँ, मोह मारता डंक।
दे दो इसको शरण ज्यों, माता सुत को अंक ॥३२॥

कौन पूजता मूल्य क्या, शून्य रहा बिन अंक।
आप अंक हैं शून्य मैं, प्राण फूँक दो शंख ॥३३॥

चन्द्र कलंकित किंतु हो, चन्द्रप्रभ अकलंक।
वह तो शंकित केतु से, शंकर तुम निःशंक ॥३४॥

रंक बना हूँ मम अतः, मेटो मन का पंक।
जाप जपूँ जिन नाम का, बैठ सदा पर्यंक ॥३५॥

श्री पुष्पदन्त भगवान

सुविधि! सुविधि के पूर हो, विधि से हो अति दूर।
मम मन से मत दूर हो, विनती हो मंजूर ॥३६॥

किस वन की मूली रहा मैं, तुम गगन विशाल।
दरिया में खसखस रहा, दरिया मौन निहार ॥३७॥

फिर किस विध निरखूँ तुम्हें, नयन करूँ विस्फार।
नाचूँ गाऊँ ताल दूँ, किस भाषा में ढाल ॥३८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

बाल मात्र भी ज्ञान ना, मुझमें मैं मुनि बाल।
बवाल भव का मम मिटे, तुम पद में मम भाल ॥३९॥

श्री शीतलनाथ भगवान

चिन्ता छूती कब तुम्हें, चिंतन से भी दूर।
अधिगम में गहरे गये, अव्यय सुख के पूर ॥४०॥

युगों-युगों से युग बना, विघन अघों का गेह।
युग द्रष्टा युग में रहें, पर ना अघ से नेह ॥४१॥

शीतल चंदन है नहीं, शीतल हिम ना नीर।
शीतल जिन! तव मत रहा, शीतल हरता पीर ॥४२॥

सुचिर काल से मैं रहा, मोह नींद से सुप्त।
मुझे जगाकर, कर कृपा, प्रभो करो परितृप्त ॥४३॥

श्री श्रेयोनाथ भगवान

राग द्वेष अरु मोह ये, होते कारण तीन।
तीन लोक में भ्रमित यह, दीन हीन अघ-लीन ॥४४॥

निज क्या, पर क्या, स्व-पर क्या, भला बुरा बिन बोध।
जिजीविषा ले खोजता, सुख ढोता तन बोझ ॥४५॥

अनेकान्त की कान्ति से, हटा तिमिर एकान्त।
नितान्त हर्षित कर दिया, क्लान्त विश्व को शान्त ॥४६॥

निःश्रेयस सुखधाम हो, हे जिनवर! श्रेयांस।
तव थुति अविरल मैं करूँ, जब लौं घट में श्वाँस ॥४७॥

श्री वासुपूज्य भगवान

औ न दया बिन धर्म ना, कर्म कटे बिन धर्म।
धर्म मर्म तुम समझकर, कर लो अपना कर्म ॥४८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

वासुपूज्य जिनदेव ने, देकर यूँ उपदेश।
सबको उपकृत कर दिया, शिव में किया प्रवेश ॥४९॥

वसुविध मंगल द्रव्य ले, जिन पूजो सागार।
पाप घटे फलतः फले, पावन पुण्य अपार ॥५०॥

बिना द्रव्य शुचि भाव से, जिन पूजो मुनि लोग।
बिन निज शुभ उपयोग के, शुद्ध न हो उपयोग ॥५१॥

श्री विमलनाथ भगवान

काया कारा में पला, प्रभु तो कारातीत।
चिर से धारा में पड़ा, जिनवर धारातीत ॥५२॥

कराल काला व्याल सम, कुटिल चाल का काल।
विष विरहित उसको किया, किया स्वप्न साकार ॥५३॥

मोह अमल बस समल बन, निर्बल मैं भयवान।
विमलनाथ तुम अमल हो, सम्बल दो भगवान ॥५४॥

ज्ञान छोर तुम मैं रहा, ना समझ की छोर।
छोर पकड़कर झट इसे, खींचो अपनी ओर ॥५५॥

श्री अनन्तनाथ भगवान

आदि रहित सब द्रव्य हैं, ना हो इनका अन्त।
गिनती इनकी अन्त से, रहित अनन्त अनन्त ॥५६॥

कर्ता इनका पर नहीं, ये न किसी के कर्म।
सन्त बने अरिहन्त हो, जाना पदार्थ धर्म ॥५७॥

अनन्त गुण पा कर दिया, अनन्तभव का अन्त।
'अनन्त' सार्थक नाम तव, अनन्त जिन जयवन्त ॥५८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अनन्त सुख पाने सदा, भव से हो भयवन्त।
अन्तिम क्षण तक मैं तुम्हें, स्मरूँ स्मरें सब संत ॥५९॥

श्री धर्मनाथ भगवान

जिससे बिछुड़े जुड़ सकें, रुदन रुके मुस्कान।
तनगत चेतन दिख सके,वही धर्म सुखखान ॥६०॥

विरागता में राग हो, राग नाग विष त्याग।
अमृतपान चिर कर सकें,धर्म यही झट जाग ॥६१॥

दया धर्म वर धर्म है, अदया भाव अधर्म।
अधर्म तज प्रभु धर्म ने, समझाया पुनि धर्म ॥६२॥

धर्मनाथ को नित नमूँ, सधे शीघ्र शिव शर्म।
धर्म-मर्म को लख सकूँ मिटे मलिन मम कर्म ॥६३॥

श्री शान्तिनाथ भगवान

सकलज्ञान से सकल को, जान रहे जगदीश।
विकल रहे जड़ देह से, विमल नमूँ नत शीश ॥६४॥

कामदेव हो काम से, रखते कुछ ना काम।
काम रहे ना कामना, तभी बने सब काम ॥६५॥

बिना कहे कुछ आपने, प्रथम किया कर्तव्य।
त्रिभुवन पूजित आप्त हो, प्राप्त किया प्राप्तव्य ॥६६॥

शान्तिनाथ हो शान्त कर, सातासाता सान्त।
केवल, केवल ज्योतिमय, क्लान्ति मिटी सब ध्वांत ॥६७॥

श्री कुन्थुनाथ भगवान

ध्यान अग्नि से नष्ट कर, प्रथम पाप परिताप।
कुन्थुनाथ पुरुषार्थ से, बने न अपने आप ॥६८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

उपादान की योग्यता, घट में ढलती सार।
कुम्भकार का हाथ हो, निमित्त का उपकार ॥६९॥

दीनदयाल प्रभु रहे, करुणा के अवतार।
नाथ अनाथों के रहे, तार सको तो तार ॥७०॥

ऐसी मुझपे हो कृपा मम मन मुझ में आय।
जिस विध पल में लवण है, जल में घुल मिल जाय ॥७१॥

श्री अरनाथ भगवान

चक्री हो पर चक्र के, चक्कर में ना आय।
मुमुक्षुपन जब जागता, बुभुक्षुपन भग जाय ॥७२॥

भोगों का कब अन्त है, रोग भोग से होय।
शोक रोग में हो अतः काल योग का रोय ॥७३॥

नाम मात्र भी नहिं रखो, नाम-काम से काम।
ललाम आतम में करो, विराम आठों याम ॥७४॥

नाम धरो 'अर' नाम तव, अतः स्मरूँ अविराम।
अनाम बन शिवधाम में, काम बनूँ कृत-काम ॥७५॥

श्री मल्लिनाथ भगवान

क्षार क्षार भर है भरा, रहित सार संसार।
मोह उदय से लग रहा, सरस सार संसार ॥७६॥

बने दिगम्बर प्रभु तभी, अन्तरंग बहिरंग।
गहरी-गहरी हो नदी, उठती नहीं तरंग ॥७७॥

मोह मल्ल को मार कर, मल्लिनाथ जिनदेव।
अक्षय बनकर पा लिया, अक्षय सुख स्वयमेव ॥७८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

बाल ब्रह्मचारी विभो, बाल समान विराग।
किसी वस्तु से राग ना, तुम पद से मम राग ॥७९॥

श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान

निज में यति ही नियति है, ध्येय पुरुष पुरुषार्थ।
नियति और पुरुषार्थ का, सुन लो अर्थ यथार्थ ॥८०॥

लौकिक सुख पाने कभी, श्रमण बनो मत भ्रात!
मिले धान्य जब कृषि करे, घास आप मिल जात ॥८१॥

मुनि बन मुनिपन में निरत, हो मुनि यति बिन स्वार्थ।
मुनिव्रत का उपदेश दे, हमको किया कृतार्थ ॥८२॥

मात्र भावना मम रही, मुनिव्रत पाल यथार्थ।
मैं भी 'मुनिसुव्रत' बनूँ, पावन पाय पदार्थ ॥८३॥

श्री नमिनाथ भगवान

मात्र नग्नता को नहिं, माना प्रभु शिव-पंथ।
बिना नग्नता भी नहीं, पावो, पद अरहन्त ॥८४॥

प्रथम हटे छिलका तभी, लाली हटती भ्रात!
पाक कार्य फिर सफल हो, लो तब मुख में भात ॥८५॥

अनेकान्त का दास हो, अनेकान्त की सेव।
करूँ गहूँ मैं शीघ्र से, अनेक गुण स्वयमेव ॥८६॥

अनाथ मैं जगनाथ हो, नमिनाथ दो साथ।
तव पद में दिन रात हूँ, हाथ जोड़ नत-माथ ॥८७॥

श्री नेमिनाथ भगवान

राज तजा राजुल तजी, श्याम तजा बलराम।
नाम धाम धन मन तजा, ग्राम तजा संग्राम ॥८८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मुनि बन वन में तप सजा, मन पर लगा लगाम।
ललाम परमातम भजा, निज में किया विराम ॥८९॥

नील गगन में अधर हो, शोभित निज में लीन।
नील कमल आसीन हो, नीलम से अति नील ॥९०॥

शील-झील में तैरते, नेमि जिनेश सलील।
शील डोर मुझे बांध दो, डोर करो मत ढील ॥९१॥

श्री पार्श्वनाथ भगवान

रिपुता की सीमा रही, गहन किया उपसर्ग।
समता की सीमा यही, ग्रहण किया अपवर्ग ॥९२॥

क्या-क्यों किस विध कब कहें, आत्म ध्यान की बात।
पल में मिटती चिर बसी, मोह अमा की रात ॥९३॥

खास-दास की आस बस, श्वास-श्वास पर वास।
पार्श्व करो मत दास को, उदासता का दास ॥९४॥

ना तो सुर-सुख चाहता, शिवसुख की ना चाह।
तव थुति सरवर में सदा, होवे मम अवगाह ॥९५॥

श्री महावीर भगवान

क्षीर रहो प्रभु नीर मैं, विनती करूँ अखीर।
नीर मिला लो क्षीर में, और बना दो क्षीर ॥९६॥

अबीर हो, तुम वीर भी, धरते ज्ञान शरीर।
सौरभ मुझ में भी भरो, सुरभित करो समीर ॥९७॥

नीर-निधी से धीर हो, वीर बनें गंभीर।
पूर्ण तैर कर पा लिया, भवसागर का तीर ॥९८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अधीर हूँ मुझे धीर दो, सहन करूँ सब पीर।
चीर-चीर कर चिर लखूँ, अन्दर की तस्वीर ॥९९॥

गुरु स्मृति

तरणि ज्ञानसागर गुरो! तारो मुझे ऋषीश।
करुणाकर! करुणा करो! कर से दो आशीष ॥१००॥

स्थान एवं समय परिचय

भव सागर से भीत हैं, सागर के सागार।
प्रथम बार पहुँचा यहाँ, ससंघ मैं अनगार ॥१०१॥

द्रव्य गगन गति, गंध की वीर जयन्ती आज।
पूर्ण किया इस ग्रन्थ को ध्येय बनूँ जिनराज ॥१०२॥

अंकानां वामतो गतिः अनुसार
गंध = २, गति = ५, गगन = ०, द्रव्य = ६
वी० नि० सं० २५०६ श्री महावीर जयन्ती
स्थान- सागर, दिनांक २९..०३.१९८०, शनिवार

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पूर्णोदयशतक

(दोहा)

बिन तन बिन मन वचन बिन, बिना करण बिन वर्ण।
गुणगण गुम्फन घन नमूँ, शिवगण को बिन स्वर्ण ॥१॥

पाणि-पात्र के पाद में, पल-पल हो प्रणिपात।
पाप खपा, पा, पार को, पावन पाऊँ प्रान्त ॥२॥

शत-शत सुर-नर-पति करें, वंदन शत-शत बार।
जिन बनने जिन-चरण रज, लूँ मैं शिर पर धार ॥३॥

सुर-नर यति-पति पूजते, सुध-बुध सभी बिसार।
गुरु गौतम गणधर नमूँ, उमंग से उर धार ॥४॥

नमूँ भारती तारती, उतारती उस तीर।
सुधी उतारें आरती, हरती खलती पीर ॥५॥

तरणि ज्ञानसागर गुरो! तारो मुझे ऋषीश।
करुणाकर करुणा करो, कर से दो आशीष ॥६॥

कौरव रव-रव में गये, पाण्डव क्यों शिव-धाम।
स्वार्थ तथा परमार्थ का, और कौन परिणाम? ॥७॥

पारस-मणि के परस से, लोह हेम बन जाय।
पारस के तो दरस से, मोह क्षेम बन जाय ॥८॥

एक साथ लो! बैल दो, मिल कर खाते घास।
लोकतन्त्र पा क्यों लड़ो? क्यों आपस में त्रास? ॥९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दिखा रोशनी रोष ना, शत्रु मित्र बन जाय।
भावों का बस खेल है, शूल फूल बन जाय ॥१०॥

उच्च-कुलों में जनम ले, नदी निम्नगा होय।
शांति, पतित को भी मिले, भाव बड़ों का होय ॥११॥

सूर्योदय से मात्र ना, ऊष्मा मिले प्रकाश।
सूर-दास तक को मिले, दिशा-बोध अविनाश ॥१२॥

मानव का कल-कल नहीं, कल-कल नदी निनाद।
पंछी का कलरव रुचे, मानव! तज उन्माद ॥१३॥

भू पर निगले नीर में ना मेंढ़क को नाग।
निज में रह बाहर गया, कर्म दबाते जाग ॥१४॥

कब तक कितना पूछना, चलते चल अविराम।
रुको रुको यूँ सफलता, आप कहे यह धाम ॥१५॥

जिनवर आँखें अध-खुलीं, जिनमें झलके लोक।
आप दिखे सब, देख ना!, स्वस्थ रहे उपयोग ॥१६॥

ऊधम से तो दम मिटे, उद्यम से दम आय।
बनो दमी हो आदमी, कदम-कदम जम जाय ॥१७॥

दोष रहित आचरण से, चरण पूज्य बन जाय।
चरण धूल तक शिर चढ़े, मरण पूज्य बन जाय ॥१८॥

तन से मन से वचन से, चेतन में अब डूब।
डूबा अब तक खूब है, तन से अब तो ऊब ॥१९॥

एक साथ सब कर्म का, उदय कभी ना होय।
बूँद-बूँद कर बरसते, घन, वरना सब खोय ॥२०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नदी बदलती पथ नहीं, जब तक मिले अनन्त।
मानव पथ क्यों बदलता, बनकर भी हे सन्त ! ॥२१॥

आत्मामृत तज विषय में, रमता क्यों यह लोक?
खून चूसती दुग्ध तज, गो-थन में क्यों जोंक? ॥२२॥

मदन मान का मूल मन, मूल मिटा प्रभु आप।
मदनजयी, जित मान हो, पावन अपने आप ॥२३॥

देह गेह का नेह तज, आतम हो अनुभूत।
स्नेह जले दीपक तभी, करे उजाला पूत ॥२४॥

ज्ञान तथा वैराग्य ये, शिव-पथ-साधक दोय।
खड्ग ढाल ले भूप ज्यों, श्री यश धारक होय ॥२५॥

नाम बने परिणाम तो, प्रमाण बनता मान।
उपसर्गों से क्यों डरो? पार्श्व बने भगवान ॥२६॥

प्रभु चरणों में हार कर, शस्त्र डाल कर काम।
विनीत हो पूजक बना, झुक-झुक करे प्रणाम ॥२७॥

तभी शूल सब फूल हों, पूजन साधन सार।
सत् संगति का फल मिले, भव-सागर का पार ॥२८॥

काया का कायल नहीं, काया में हूँ आज।
कैसे काया-कल्प हो, ऐसा कर तप-काज ॥२९॥

छुप-छुपकर क्यों छापते, निश्छल छवि पर छाप।
ताप-पाप संताप के, रूप उघड़ते आप ॥३०॥

पेटी भर ना पेट भर, खेती कर, नाऽऽखेट।
लोकतन्त्र में लोक का, संग्रह हो भरपेट ॥३१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नम्र बनो मानी नहीं, जीवन वरना मौत।
वेत बनो ना वट बनो, सुर-शिव-सुख का स्त्रोत ॥३२॥

अलख जगा कर देख ले, विलख, विलख मत हार।
निरख,निरख निज को जरा, हरख, हरख इस बार ॥३३॥

चल-चल जिस पर विभु हुए, चल-चल तू उस पन्थ।
चल, चल वरना बीच से, चल चल होगा सन्त ! ॥३४॥

वश में हो सब इन्द्रियाँ, मन पर लगे लगाम।
वेग बढ़े निर्वेग का, दूर नहीं फिर धाम ॥३५॥

फड़-फड़-फड़-फड़ बन्द कर, पक्षपात के पाँख।
सुदूर खुद में उतर आ, एक बार तो झाँक ॥३६॥

शील, नसीले द्रव्य के, सेवन से नश जाय।
संत-शास्त्र-संगति करे, और शील कस जाय ॥३७॥

जठरानल अनुसार हो, भोजन का परिणाम।
भावों के अनुसार ही, कर्म-बन्ध-फल-काम ॥३८॥

नस नस मानस-रस, नसे, नसे मोह का वंश।
लसे हृदय में बस भले, जिनोपासना अंश ॥३९॥

यम-संयम-दम-नियम ले, कर आगम अभ्यास।
उदास जग से, दास बन, प्रभु का सो संन्यास ॥४०॥

गुरु -चरणों की शरण में, प्रभु पर हो विश्वास।
अक्षय-सुख के विषय में, संशय का हो नाश ॥४१॥

स्वयं तिरे, ना तारती कभी अकेली नाव।
पूजा नाविक की करो, बने पूज्य तब नाव ॥४२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नहीं व्यक्ति को पकड़ तू, वस्तु-धर्म को जान।
मान तथा बहुमान दे, विराटता का गान ॥४३॥

वर्ण लाभ वरदान है, संकर से हो दूर।
नीर-दूध में ले मिला, आक-दूध ना भूल ॥४४॥

गगन चूमते शिखर हैं, भू-स्पर्शी क्यों द्वार?
बता जिनालय ये रहे, नत बन, मत मद धार ॥४५॥

सार-सार का ग्रहण हो, असार को फटकार।
नहीं चालनी तुम बनो, करो सूप-सत्कार ॥४६॥

नयन-नीर लख नयन में, आता यदि ना नीर।
नीर पोंछना पूछना, उपरिल उपरिल पीर ॥४७॥

बड़े-बड़े ना पाप हों, बड़ी-बड़ी ना भूल।
चमड़ी दमड़ी के लिए पगड़ी पर क्यों धूल? ॥४८॥

एक तरफ से मित्रता, सही नहीं वह मित्र।
अनल पवन का मित्र ना, पवन अनल का मित्र ॥४९॥

विगत अनागत आज का, हो सकता श्रद्धान।
शुद्धातम का ध्यान तो, घर में कभी न मान ॥५०॥

मात्रा मौलिक कब रही, गुणवत्ता अनमोल।
जितना बढ़ता ढोल है, उतनी बढ़ती पोल ॥५१॥

चाव-भाव से धर्म कर, उज्ज्वल कर ले भाल।
माल नहीं पर भाव से, बन तू मालामाल ॥५२॥

मोही जड़ से भ्रमित हो, ज्ञानी तो भ्रम खोय।
नीर उष्ण हो अनल से, कहाँ उष्ण हिम होय ॥५३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सागर का जल तप रहा, मेघ बरसते नीर।
बह-बह वह सागर मिले, यही नीर की पीर ॥५४॥

न्यायालय में न्याय ना, न्यायशास्त्र में न्याय।
झूठ छूटता, सत्य पर, टूट पड़े अन्याय ॥५५॥

सीमा तक तो सहन हो, अब तो सीमा पार।
पाप दे रहा दण्ड है, पड़े पुण्य पर मार ॥५६॥

सौ-सौ कुम्हड़े लटकते, बेल भली बारीक।
भार नहीं अनुभूत हो, भले संघ गुरु ठीक ॥५७॥

जिसके स्वामीपन रहे, नहीं लगे वह भार।
निजी काय भी भार क्या लगता कभी कभार? ॥५८॥

कर्त्तापन की गन्ध बिन, सदा करे कर्तव्य।
स्वामीपन ऊपर धरे, ध्रुव पर हो मन्तव्य ॥५९॥

सन्तों के आगमन से, सुख का रहे न पार।
सन्तों का जब गमन हो, लगता जगत असार ॥६०॥

सुन, सुन गुरु-उपदेश को, बुन बुन मत अघजाल।
कुन-कुन कर परिणाम तू, पुनि पुनि पुण्य संभाल ॥६१॥

निर्धनता वरदान है, अधिक धनिकता पाप।
सत्य तथ्य की खोज में, निर्गुणता अभिशाप ॥६२॥

नीर नीर है क्षीर ना, क्षीर क्षीर ना नीर।
चीर चीर है जीव ना, जीव जीव ना चीर ॥६३॥

कर पर कर धर करणि कर, कल-कल मत कर और।
वरना कितना कर चुका-कर मरना ना छोर ॥६४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

यान करे बहरे इधर, उधर यान में शान्त।
कोरा कोलाहल यहाँ, भीतर तो एकान्त ॥६५॥

सूरज दूरज हो भले, भरी गगन में धूल।
सर में पर नीरज खिले, धीरज हो भरपूर ॥६६॥

बान्धव रिपु को सम गिनो, संतों की यह बात।
फूल चुभन क्या ज्ञात है ! शूल चुभन तो ज्ञात ॥६७॥

क्षेत्र काल के विषय में, आगे पीछे और।
ऊपर नीचे ध्यान दूँ, ओर दिखे ना छोर ॥६८॥

स्वर्ण-पात्र में सिंहनी, दुग्ध टिके नाऽन्यत्र।
विनय पात्र में शेष भी, गुण टिकते एकत्र ॥६९॥

परसन से तो राग हो, हर्षण से हो दाग।
घर्षण से तो आग हो, दर्शन से हो जाग ॥७०॥

माँग सका शिव माँग ले, भाग सका चिर भाग।
त्याग सका अघ-त्याग ले, जाग सका चिर जाग ॥७१॥

साधु-सन्त कृत शास्त्र का, सदा करो स्वाध्याय।
ध्येय, मोह का प्रलय हो, ख्याति-लाभ व्यवसाय ॥७२॥

आप अधर मैं भी अधर, आप स्व वश हो देव।
मुझे अधर में लो उठा, परवश हूँ दुर्दैव ॥७३॥

मंगल में दंगल बने, पाप कर्म दे साथ।
जंगल में मंगल बने, पुण्योदय में भ्रात! ॥७४॥

धोओ मन को धो सको, तन को धोना व्यर्थ।
खोओ गुण में खो सको, धन में खोना व्यर्थ ॥७५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

त्रिभुवन-जेता काम भी, दोनों घुटने टेक।
शीश झुकाते दिख रहा, जिन चरणों में देख ॥७६॥

तोल तुला मैं अतुल हूँ, पूरण वर्तुल व्यास।
जमा रहूँ बस केन्द्र में, बिना किसी आयास ॥७७॥

व्यास बिना वह केन्द्र ना, केन्द्र बिना ना व्यास।
परिधि तथा उस केन्द्र का, नाता जोड़े व्यास ॥७८॥

केन्द्र रहा सो द्रव्य है, और रहा गुण व्यास।
परिधि रही पर्याय है, तीनों में व्यत्यास ॥७९॥

व्यास केन्द्र या परिधि को, बना यथोचित केन्द्र।
बिना हठाग्रह निरख तू, निज में यथा जिनेन्द्र ॥८०॥

वृषभ चिह्न को देखकर, स्मरण वृषभ का होय।
वृषभ-हानि को देखकर, कृषक-धर्म अब रोय ॥८१॥

काला पड़ता जा रहा, भारत का गुरु भाल।
भारी बढ़ता जा रहा, भारत का ऋण भार ॥८२॥

वर्णों का दर्शन नहीं, वर्णों तक ही वर्ण।
चार वर्ण के थान पर, इन्द्र धनुष से वर्ण ॥८३॥

वर्ण-लाभ से मुख्य है, स्वर्णलाभ ही आज।
प्राण बचाने जा रहे, मनुज बेच कर लाज ॥८४॥

विषम पित्त का फल रहा, मुख का कडुवा स्वाद।
विषम वित्त से चित्त में, बढ़ता है उन्माद ॥८५॥

कानों से तो हो सुना, आँखों देखा हाल।
फिर भी मुख से ना कहे, सज्जन का यह ढाल ॥८६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दीप कहाँ दिनकर कहाँ, इन्दु कहाँ खद्योत।
कूप कहाँ सागर कहाँ, यह तोता प्रभु पोत ॥८७॥

धर्म धनिकता में सदा, देश रहे बल जोर।
भवन वही बस चिर टिके, नींव नहीं कमजोर ॥८८॥

बाल गले में पहुँचते, स्वर का होता भंग।
बाल, गेल में पहुँचते, पथ-दूषित हो संघ ॥८९॥

बाधक शिव-पथ में नहीं, पुण्य कर्म का बन्ध।
पुण्य-बन्ध के साथ भी, शिव पथ बढ़े अमन्द ॥९०॥

पुण्य कर्म अनुभाग को, नहीं घटाता भव्य।
मोहकर्म की निर्जरा, करता है कर्तव्य ॥९१॥

तभी मनोरथ पूर्ण हो, मनोयोग थम जाय।
विद्यारथ पर रूढ़ हो, तीन लोक नम जाय ॥९२॥

हुआ पतन बहुबार है, पा कर के उत्थान।
वही सही उत्थान है, हो न पतन-सम्मान ॥९३॥

सौरभ का विस्तार हो, नीरस ना रस कूप।
नमूँ तुम्हें तुम तम हरो, रूप दिखाओ धूप ॥९४॥

नहीं सर्वथा व्यर्थ है, गिरना भी परमार्थ।
देख गिरे को, हम जगें, सही करें पुरुषार्थ ॥९५॥

गगन-गहनता गुम गई, सागर का गहराव।
हिला हिमालय दिल विभो ! देख सही ठहराव ॥९६॥

निरखा प्रभु को, लग रहा, बिखरा सा अघ-राज॥
हलका-सा अब लग रहा, झलका सा कुछ आज ॥९७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ईश दूर पर मैं सुखी, आस्था लिए अभंग।
ससूत्र बालक खुश रहे, नभ में उड़े पतंग ॥९८॥

हृदय मिला पर सदय ना, अदय बना चिर-काल।
अदया का अब विलय हो, चाहूँ दीन-दयाल! ॥९९॥

चेतन में ना भार है, चेतन की ना छाँव।
चेतन की फिर हार क्यों? भाव हुआ दुर्भाव ॥१००॥

चिन्ता ना परलोक की, लौकिकता से दूर।
लोक-हितैषी बस बनूँ, सदा लोक से पूर ॥१०१॥

स्थान एवं समय संकेत

रामटेक में, योग से, दूजा वर्षायोग।
शान्तिनाथ की छाँव में, शोक मिटे अघ रोग ॥१०२॥

गगन-गन्ध-गति-गोत्र का, भादों-पूनम-योग॥
'पूर्णोदय' पूरण हुआ, पूर्ण करें उपयोग ॥१०३॥

अंकानां वामतो गतिः अनुसार
गोत्र = २, गति = ५, गन्ध = २, गगन = ०
भादों सुदी १५ वीर निर्वाण संवत् २५२०
दिनांक १९.९.१९९४, सोमवार
श्री अतिशय क्षेत्र शान्तिनाथ, रामटेक

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सर्वोदयशतक

(दोहा)

कल्प-वृक्ष से अर्थ क्या? कामधेनु भी व्यर्थ।
चिन्तामणि को भूल अब, सन्मति मिले समर्थ ॥१॥

तीर उतारो, तार दो, त्राता! तारक वीर।
तत्त्व-तन्त्र हो तथ्य हो, देव देवतरु धीर ॥२॥

पूज्यपाद गुरु पाद में, प्रणाम हो सौभाग्य।
पाप ताप संताप घट, और बढ़े वैराग्य ॥३॥

भार रहित मुझ, भारती! कर दो सहित सुभाल।
कौन संभाले माँ बिना, ओ माँ! यह है बाल ॥४॥

सर्वोदय इस शतक का, मात्र रहा उद्देश।
देश तथा परदेश भी, बने समुन्नत देश ॥५॥

पंक नहीं पंकज बनूँ, मुक्ता बनूँ न सीप।
दीप बनूँ जलता रहूँ, प्रभु-पद-पद्म-समीप ॥६॥

प्रमाण का आकार ना, प्रमाण में आकार।
प्रकाश का आकार ना, प्रकाश में आकार ॥७॥

एक नजर तो मोहिनी, जिससे निखिल अशान्त।
एक नजर तो डाल दो, प्रभु! अब सब हों शान्त ॥८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भास्वत मुख का दरस हो, शाश्वत सुख की आस।
दासक-दुख का नाश हो, पूरी हो अभिलाष ॥९॥

दृष्टि मिली पर कब बनूँ, द्रष्टा सब का धाम।
सृष्टि मिली पर कब बनूँ, स्रष्टा निज का राम ॥१०॥

गुण ही गुण, पर में सदा, खोजूँ निज में दाग।
दाग मिटे बिन गुण कहाँ, तामस मिटते राग! ॥११॥

सुनें वचन कटु पर कहाँ, श्रमणों को व्यवधान।
मस्त चाल से गज चले, रहें भोंकते श्वान ॥१२॥

मत डर, मत डर मरण से, मरण मोक्ष-सोपान।
मत डर, मत डर चरण से, चरण मोक्ष सुख-पान ॥१३॥

सागर का जल क्षार क्यों, सरिता मीठी सार।
बिन श्रम संग्रह अरुचि है, रुचिकर श्रम उपकार ॥१४॥

देख सामने चल अरे, दीख रहे अवधूत।
पीछे मुड़कर देखता, उसको दिखता भूत ॥१५॥

पद पंखों को साफ कर, मक्खी उड़ती बाद।
सर्व-संग तज ध्यान में, डूबो तुम आबाद ॥१६॥

अँधेर कब दिनकर तले? दिया तले वह होत।
दुखी अधूरे हम सभी, प्रभु पूरे सुख स्रोत ॥१७॥

यथा दुग्ध में घृत तथा, रहता तिल में तैल।
तन में शिव है, ज्ञात हो, अनादि का यह मेल ॥१८॥

हुआ प्रकाशित मैं छुपा, प्रभु हैं प्रकाश पुंज।
हुआ सुवासित, महकते तुम पद विकास कुंज ॥१९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

निरे-निरे जग-धर्म हैं, निरे-निरे जग-कर्म।
भले बुरे कुछ ना अरे! हरे, भरे हो नर्म ॥२०॥

विषयों से क्यों खेलता, देता मन का साथ।
बाँमी में क्या डालता? भूल कभी निज हाथ ॥२१॥

खेत, क्षेत्र में भेद, इक-फलता पुण्यापुण्य।
क्षेत्र करे सबका भला, फलता सुख अक्षुण्ण ॥२२॥

ऐसा आता भाव है, मन में बारम्बार।
पर दुख को यदि ना मिटा सकता जीवन भार ॥२३॥

पल-भर पर-दुख देख भी सकते ना जिनदेव।
तभी दृष्टि आसीन है, नासा पर स्वयमेव ॥२४॥

सूखे परिसर देखते, भोजन करते आप।
फिर भी खुद को समझते, दयामूर्ति निष्पाप ॥२५॥

हाथ देख मत देख लो, मिला बाहुबल-पूर्ण।
सदुपयोग बल का करो, सुख पाओ संपूर्ण ॥२६॥

उगते अंकुर का दिखा, मुख सूरज की ओर।
आत्मबोध हो तुरत ही, मुख संयम की ओर ॥२७॥

दया रहित क्या धर्म है? दया रहित क्या सत्य?
दया रहित जीवन नहीं, जल बिन मीन असत्य ॥२८॥

पानी भरते देव हैं, वैभव होता दास।
मृग-मृगेन्द्र मिल बैठते, देख दया का वास ॥२९॥

कूप बनो तालाब ना, नहीं कूप-मंडूक।
बरसाती मेंढक नहीं, बरसो घन बन मूक ॥३०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अग्रभाग पर लोक के, जा रहते नित सिद्ध।
जल में ना, जल पर रहे, घृत तो ज्ञात प्रसिद्ध ॥३१॥

साधु, गृही सम ना रहे, स्वाश्रित-भाव समृद्ध।
बालक-सम ना नाचते, मोदक खाते वृद्ध ॥३२॥

तत्त्व-दृष्टि तज बुध नहीं, जाते जड़ की ओर।
सौरभ तज मल पर दिखा, भ्रमर-भ्रमित कब और? ॥३३॥

दया धर्म के कथन से, पूज्य बने ये छन्द।
पापी तजते पाप हैं, दृग पा जाते अन्ध ॥३४॥

सिद्ध बने बिन शुद्ध का, कभी न अनुभव होय।
दुग्ध-पान से स्वाद क्या, घृत का सम्भव होय? ॥३५॥

स्वर्ण बने वह कोयला, और कोयला स्वर्ण।
पाप-पुण्य का खेल है, आतम में ना वर्ण ॥३६॥

सब में वह ना योग्यता, मिले न सब को मोक्ष।
बीज सीझते सब कहाँ, जैसे ठर्रा मोठ ॥३७॥

सब गुण मिलना चाहते, अन्धकार का नाश।
मुक्ति स्वयं आ उतरती, देख दया का वास ॥३८॥

व्यर्थ नहीं वह साधना, जिसमें नहीं अनर्थ।
भले मोक्ष हो देर से, दूर रहे अघ गर्त ॥३९॥

जलेबियाँ ज्यों चासनी, में सनती आमूल।
दया-धर्म में तुम सनो, नहीं पाप में भूल ॥४०॥

संग्रह पर का तब बने, जब हो मूर्च्छा-भाव।
प्रभाव शनि का क्यों पड़े? मुनि में मोहाभाव ॥४१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

किस-किस का कर्त्ता बनूँ, किस-किस का मैं कार्य।
किस-किस का कारण बनूँ, यह सब क्यों कर आर्य? ॥४२॥

पर का कर्त्ता मैं नहीं, मैं क्यों पर का कार्य।
कर्त्ता कारण कार्य हूँ, मैं निज का अनिवार्य ॥४३॥

लघु-कंकर भी डूबता, तिरे काष्ठ भी स्थूल।
क्यों मत पूछो, तर्क से स्वभाव रहता दूर ॥४४॥

फूल-फलों से ज्यों लदे, घनी छाँव के वृक्ष।
शरणागत को शरण दे, श्रमणों के अध्यक्ष ॥४५॥

थकता, रुकता कब कहाँ, ध्रुव में नदी प्रवाह।
आह वाह परवाह बिन, चले सूरि शिव-राह ॥४६॥

बूँद-बूँद के मिलन से, जल में गति आ जाय।
सरिता बन सागर मिले, सागर बूँद समाय ॥४७॥

कंचन पावन आज पर, कल खानों में वास।
सुनो! अपावन चिर रहा, हम सबका इतिहास ॥४८॥

किस किस को रवि देखता, पूछे जग के लोग।
जब-जब देखूँ देखता, रवि तो मेरी ओर ॥४९॥

सत्कार्यों का कार्य है, शान्ति मिले सत्कार।
दुष्कार्यों का कार्य है, दुस्सह दुख दुत्कार ॥५०॥

बनो तपस्वी तप करो, करो न ढीला शील।
भू-नभ मण्डल जब तपे, बरसे मेघा नीर ॥५१॥

घुट-घुटकर क्यों जी रहा, लुट-लुट कर क्यों दीन?
अन्तर्घट में हो जरा, सिमट-सिमट कर लीन ॥५२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

बाहर श्रीफल कठिन ज्यों, भीतर से नवनीत।
जिनशासक आचार्य को, विनमूँ, नमूँ विनीत ॥५३॥

सन्त पुरुष से राग भी, शीघ्र मिटाता पाप।
उष्ण नीर भी आग को, क्या न बुझाता आप? ॥५४॥

ओर छोर शुरुआत ना, घनी अंधेरी रात।
विषयों की बरसात है, युगों-युगों की बात ॥५५॥

गात्र प्राप्त था गात्र है, आत्म गोत्र ना प्राप्त।
आत्मबोध क्यों ज्ञात हो, युगों-युगों की बात ॥५६॥

क्या था क्या हूँ क्या बनूँ? रे मन! अब तो सोच।
वरना मरना वरण कर, बार-बार अफसोस ॥५७॥

माना मनमाना करे, मन का धर्म गरूर।
मानतुंग के स्मरण से, मानतुंग हो चूर ॥५८॥

संग रहित बस! अंग है, यथाजात शिशु ढंग।
श्रमण जिन्हें मम नमन हो, मानस में न तरंग ॥५९॥

अंत किसी का कब हुआ? अनंत सब हे सन्त !
पर, सब मिटता सा लगे, पतझड़ पुनः बसन्त ॥६०॥

क्रूर भयानक सिंह भी, फना उठाते नाग।
तीर्थ जहाँ पर शान्त हो, लपटों वाली आग ॥६१॥

बिना मूल के चूल ना, चूल बिना फल-फूल।
रे ! बिन विधि अनुकूल ये, सभी धूल मत भूल ॥६२॥

प्रभु-दर्शन फिर गुरु कृपा, तदनुसार पुरुषार्थ।
दुर्लभ जग में तीन ये, मिले सार परमार्थ ॥६३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सब कुछ लखते पर नहीं, प्रभु में हास-विलास।
दर्पण रोया कब हँसा? कैसा यह संन्यास? ॥६४॥

बादल दलदल यदि करे, दलदल धोवन-हार।
और कौन सा दल रहा? धरती पर दिल-दार ॥६५॥

तरंग क्रम से चल रही, पल-पल प्रति पर्याय।
ध्रुव-पदार्थ में पूर्व का, व्यय होता, फिर आय! ॥६६॥

रहस्य खुलता आप जब, सहज मिटे संघर्ष।
वस्तु-धर्म के दरस से, विषाद क्यों हो हर्ष? ॥६७॥

आस्था का बस विषय है, शिव-पथ सदा अमूर्त।
वायु-यान पथ कब दिखा, शेष सभी पथ मूर्त ॥६८॥

किये जा रहे जोश से, विश्व-शान्ति का घोष।
दोषों के तो कोष हैं, कहाँ किसे है होश? ॥६९॥

सुना, सुनाता तुम सुनो, सोना 'सो' ना प्राण।
प्राण जगाते झट जगो, प्राणों का हो त्राण ॥७०॥

सब को मिलता कब कहाँ? अपार श्रुत का पार।
पर, श्रुत-पूजन से मिले,अपार भवदधि-पार ॥७१॥

उपादान की योग्यता, निमित्त की भी छाप।
स्फटिक मणि में लालिमा, गुलाब बिन ना आप ॥७२॥

पापत्याग के बाद भी, स्वल्प रहे संस्कार।
झालर बजना बन्द हो, किन्तु रहे झंकार ॥७३॥

राम रहे अविराम निज - में रमते अभिराम।
राम-नाम लेता रहूँ, प्रणाम आठों याम ॥७४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चन्दन घिसता चाहता, मात्र गन्ध का दान।
फल की वांछा कब करें, मुनिजन जगकल्याण ॥७५॥

धर्म-ध्यान ना, शुक्ल से, मोक्ष मिले आखीर।
जितना गहरा कूप हो, उतना मीठा नीर ॥७६॥

आकुल व्याकुल कुल रहा, मानव संकुल, कूल-
मिला ना अब तक क्यों मिले, प्रतीति जब प्रतिकूल ॥७७॥

खून ज्ञान, नाखून से, खून रहित नाखून।
चेतन का संधान तन, तन चेतन से न्यून ॥७८॥

आत्मबोध घर में तनक, रागादिक से पूर।
कम प्रकाश अति धूम्र ले, जलता अरे कपूर ॥७९॥

लंगड़ा भी सुरगिरि चढ़े, चील उड़ें इक पाँख।
जले दीप, बिन तेल, ना-घर में अक्षय आँख ॥८०॥

लगाम अंकुश बिन नहीं, हय, गय देते साथ।
व्रत-श्रुत बिन मन कब चले, विनम्र कर के माथ ॥८१॥

भटकी अटकी कब नदी? लौटी कब अधबीच?
रे मन! तू क्यों भटकता? अटका क्यों अघकीच? ॥८२॥

भले कूर्मगति से चलो, चलो कि ध्रुव की ओर।
किन्तु कूर्म के धर्म को, पालो पल-पल और ॥८३॥

भक्त लीन जब ईश में, यूँ कहते ऋषि लोग।
मणि-कांचन का योग ना, मणि-प्रवाल का योग ॥८४॥

खुला खिला हो कमल वह, जब लौं जल-संपर्क।
छूटा सूखा धर्म बिन, नर पशु में ना फर्क ॥८५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मन्द-मन्द मुस्कान ले, मानस हंसा होय।
अंश-अंश प्रति अंश में, मुनिवर हंसा मोय ॥८६॥

गोमाता के दुग्धसम, भारत का साहित्य।
शेष देश के क्या कहें, कहने में लालित्य ॥८७॥

उन्नत बनने नत बनो, लघु से राघव होय।
कर्ण बिना भी धर्म से, विजयी पाण्डव होय ॥८८॥

पुनः भस्म पारा बने, मिले खटाई योग।
बनो सिद्ध पर मोह तज, करो शुद्ध उपयोग ॥८९॥

माध्यस्था हो नासिका, प्रमाणिका नय आँख।
पूरक आपस में रहे, कलह मिटे अघ-पाक ॥९०॥

तन की गरमी तो मिटे, मन की भी मिट जाय।
तीर्थ जहाँ पर उभय सुख, अमिट अमित मिल जाय ॥९१॥

अनल सलिल हो विष सुधा, व्याल माल बन जाय।
दया मूर्ति के दरस से, क्या का क्या बन जाय ॥९२॥

सुचिर काल से सो रहा, तन का करता राग।
ऊ षा सम नर जन्म है, जाग सके तो जाग ॥९३॥

पूर्ण पुण्य का बन्ध हो, पाप-मूल मिट जात।
दलदल पल में सब धुले, भारी हो बरसात ॥९४॥

कुछ पर-पीड़ा दूर कर, कुछ पर को दे पीर।
सुख पाना जन चाहते, तरह-तरह तासीर ॥९५॥

दुर्जन से जब भेंट हो, सज्जन की पहचान।
ग्रहण लगे जब भानु को, तभी राहु का भान ॥९६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तीरथ जिसमें अघ धुले, मिलता भव का तीर।
कीरत जग भर में घुले, मिटती भव की पीर ॥९७॥

सत्य कार्य, कारण सही, रही अहिंसा-मात।
फल का कारण फूल है, फूल बचाओ भ्रात! ॥९८॥

अर्कतूल का पतन हो, जल-कण का पा संग।
कण या मन के संग से, रहे न मुनि पासंग ॥९९॥

जिसके उर में प्रभु लसे, क्यों न तजे जड़ राग।
चन्द्र मिले फिर ना करे, चकवा, चकवी-त्याग ॥१००॥

स्थान एवं समय-संकेत

उदय नर्मदा का जहाँ, आम्र-कूट की मोर।
सर्वोदय का शतक का, उदय हुआ है भोर ॥१०१॥

गगन-गन्ध-गति-गोत्र की, अक्षय-तृतीया पर्व।
पूर्ण हुआ शुभ सुखद है, पढ़ें सुनें हम सर्व ॥१०२॥

अंकानां वामतो गतिः अनुसार
गगन -०, गन्ध -२, गति -५, गोत्र -२
वैशाख सुदी ३ वी.नि.सं.२५२०, (वि.सं. २०५१)
दिनांक १३.५.१९९४ शुक्रवार
सर्वोदय तीर्थ, अमरकंटक

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सूर्योदयशतक

(दोहा)

सीधे सीझे शीत हैं, शरीर बिन जीवन्त।
सिद्धों को शुभ नमन हो, सिद्ध बनूँ श्रीमन्त ॥१॥

अमर उमर भर भ्रमर बन, जिन-पद में हो लीन।
उन पद में पद-चाह बिन, बनने नमूँ नवीन ॥२॥

शिव-पथ-नेता जितमना, इन्द्रिय-जेता धीश।
तथा प्रणेता शास्त्र के, जय जय जय जगदीश ॥३॥

सन्त पूज्य अरहन्त हो, यथाजात निर्ग्रन्थ।
अन्त-हीन-गुणवन्त हो, अजेय हो जयवन्त ॥४॥

सार-सार दे शारदे, बनूँ विशारद धीर।
सहार दे, दे तार, दे उतार, दे उस तीर ॥५॥

बनूँ निरापद शारदे! वर दे, ना कर देर।
देर खड़ा कर-जोड़ के, मन से बनूँ सुमेर ॥६॥

ज्ञानोदधि के मथन से, करूँ निजामृत-पान।
पार, भवोदधि जा करूँ, निराकार का मान ॥७॥

ज्ञायक बन गायक नहीं, पाना है विश्राम।
लायक बन नायक नहीं, जाना है शिव-धाम ॥८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जीवन समझे मोल है, ना समझे तो खेल।
खेल-खेल में युग गये, वही खिलाड़ी खेल ॥९॥

खेल सको तो खेल लो, एक अनोखा खेल।
आप खिलाड़ी आप ही, बनो खिलौना खेल ॥१०॥

दूर दिख रही लाल-सी, पास पहुँचते आग।
अनुभव होता पास का, ज्ञान दूर का दाग ॥११॥

यथा-काल करता गृही, कन्या का है दान।
सूरि, सूरिपद का करे, त्याग जिनागम जान ॥१२॥

प्रतिदिन दिनकर दिन करे, फिर भी दुर्दिन आय।
दिवस रात, या रात दिन, करनी का फल पाय ॥१३॥

खिड़की से क्यों देखता? दिखे दुखद संसार।
खिड़की में अब देख ले, दिखे सुखद साकार ॥१४॥

राजा ही जब ना रहा, राजनीति क्यों आज?
लोकतन्त्र में क्या बची, लोकनीति की लाज ॥१५॥

वचन-सिद्धि हो नियम से, वचन-शुद्धि पल जायें।
ऋद्धि-सिद्धि-परसिद्धियाँ, अनायास फल जायें ॥१६॥

सूक्ष्म वस्तु यदि न दिखे, उनका नहीं अभाव।
तारा-राजी रात में, दिन में नहीं दिखाव ॥१७॥

दूर दुराशय से रहो, सदा सदाशय पूर।
आश्रय दो धन अभय दो, आश्रय से जो दूर ॥१८॥

भूल नहीं पर भूलना, शिव-पथ में वरदान।
नदी भूल गिरि को करे, सागर का संधान ॥१९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

प्रभु दिखते तब और ना, और समय संसार।
रवि दिखता तो एक ही, चन्द्र साथ परिवार ॥२०॥

सुर-पुर भी नीरस रहा, रस का नहीं सवाल।
क्षार रसातल और हैं, देती 'रसा रसाल ॥२१॥

रसाल सुरभित सूँघ, छू रस का हो अनुमान।
विषय-संग बिन सन्त में, विरागता को मान ॥२२॥

प्रभु को लख हम जागते, वरना सोते घोर।
सूर्योदय प्रभु आप हैं, चन्द्रोदय हैं और ॥२३॥

कार्य देखकर हो हमें, कारण का अनुमान।
दिशा दिशान्तर में दिखा, सूर्य तभी गतिमान ॥२४॥

अनुभव ना शिव-पंथ में, आतम का अविकार।
लवण मिला जल शुचि दिखे, किन्तु स्वाद तो खार ॥२५॥

वतन दिखे ना प्रभु उन्हें, धनान्ध मन-आधीन।
उल्लू को रवि कब दिखा, दिवान्ध दिन में दीन ॥२६॥

विषय-वित्त के वश हुए, ना पाते शिव-सार।
फँसे कीच क्या? चल सके, शिर पर भारी भार ॥२७॥

भांति-भांति की भ्रान्तियां, तरह-तरह की चाल।
नाना नारद-नीतियां, ले जातीं पाताल ॥२८॥

लोकतन्त्र का भेष है, लोभ-तन्त्र ही शेष।
देश-भक्त क्या देश में, कहीं हुए निश्शेष? ॥२९॥

सत्ता का ना साथ दो, सदा सत्य के साथ।
बिना सत्य सत्ता सुनो, दे न सम्पदा साथ ॥३०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अनाथ नर हो धर्म बिन, धर्म-धार हो नाथ।
पुजता उगता सूर्य ही, नहीं डूबता भ्रात! ॥३१॥

मानी में क्षमता कहाँ?, मिला सके गुणमेल।
पानी में क्षमता कहाँ?, मिला सके घृत, तैल ॥३२॥

घूँघट ना हो राग का, मरघट जब लौं होय।
जमघट, पनघट पर रहे, पर ना दल-दल होय ॥३३॥

ठोकर खा-खा फिर रहा, दर-दर दूर दरार।
स्व-पर दया कर, दान कर, कहते दीन-दयाल ॥३४॥

यकीन किन-किन पर करो, किन-किन के हो दास।
उदास क्यों हो? एक ही, उपास्य के दो पास ॥३५॥

दूर, सहज में डूब हो, दूर रहे सब धूल।
आगत तो अभिभूत हो, और भूत हो भूल ॥३६॥

न, मन नमन परिणमन हो, नहीं श्रमण में खेद।
जब तब अब कब सब नहीं, और काल के भेद ॥३७॥

धन जब आता बीच में, वतन सहज हो गौण।
तन जब आता बीच में, चेतन होता मौन ॥३८॥

फूल राग का घर रहा, काँटा रहा विराग।
तभी फूल का पतन हो, राग त्याग, तू जाग ॥३९॥

दुबला-पतला हूँ नहीं, सबल समल ना मूढ़।
रूढ़ नहीं हूँ प्रौढ़ ना, व्यक्त नहीं हूँ गूढ़ ॥४०॥

नहीं नपुंसक पुरुष हूँ, अबला नहीं बबाल।
जरा जरा से ग्रसित भी, नहीं युवा हूँ बाल ॥४१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

काया, माया से तथा, छाया से हूँ हीन।
राजा राणा हूँ नहीं, जाया के आधीन ॥४२॥

तुलना उपमा की हवा, मुझे न लगती धूप।
स्वरूप मेरा रूप ना, कुरूप हो या रूप ॥४३॥

क्रोध काँपता, बिचकता, मान भूल निज भाव।
लाभ लौटता दूर से, मेरे देख स्वभाव ॥४४॥

जीव जिलाना जालना, दिया जलाना कार्य।
भूल भुलाना भूलना, शिव-पथ में अनिवार्य ॥४५॥

राग बिना आतम दिखे, आतम बिन ना राग।
धूम बिना तो आग हो, धूम नहीं बिन आग ॥४६॥

लौकिकता से हो परे, धरे अलौकिक शील।
कर्म करे ना फल चखे, प्रभु तो ज्यों नभ नील ॥४७॥

स्वर्गों में ना भेजते, पटके ना पाताल।
हम तुम सब को जानते, प्रभु तो जाननहार ॥४८॥

ना दे अपने पुण्य को, पर के ना ले पाप।
पाप-पुण्य से हैं परे, प्रभु अपने में आप ॥४९॥

थक जाना ना हार है, पर लेना है श्वास।
रवि निशि में विश्राम ले, दिन में करे प्रकाश ॥५०॥

चेतन का जब जतन हो, सो तन की हो धूल।
मिले सनातन धाम सो, मिटे तनातन भूल ॥५१॥

मोह दुःख का मूल है, धर्म सुखों का स्त्रोत।
मूल्य तभी पीयूष का, जब हो विष से मौत ॥५२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चिन्तन से चिन्ता मिटे, मिटे मनो मल-मार।
प्रसाद मानस में भरे, उभरें भले विचार ॥५३॥

भले-बुरे दो ध्यान हों, समाधि इक हो, दो न।
लहर झाग तट में रहे, नदी मध्य में मौन ॥५४॥

रही सम्पदा, आपदा, प्रभु से हमें बचाय।
रही आपदा सम्पदा, प्रभु में हमें रचाय ॥५५॥

कटुक मधुर गुरु वचन भी, भविक-चित्त हुलसाय।
तरुण अरुण की किरण भी, सहज कमल विकसाय ॥५६॥

सत्ता का सातत्य सो, सत्य रहा है तथ्य।
सत्ता का आश्रय रहा, शिवपथ में है पथ्य ॥५७॥

ज्ञेय बने उपयोग ही, ध्येय बने उपयोग।
शिव-पथ में उपयोग का, सदा करो उपयोग ॥५८॥

योग, भोग, उपयोग में, प्रधान हो उपयोग।
शिव-पथ में उपयोग का, सुधी करे उपयोग ॥५९॥

रसना रस गुण को कभी, ना चख सकती भ्रात!
मधुरादिक पर्याय को, चख पाती हो ज्ञात ॥६०॥

तथा नासिका सूँघती, सुगन्ध या दुर्गन्ध।
अविनश्वर गुण गन्ध से, होता ना सम्बन्ध ॥६१॥

इसी भाँति सब इन्द्रियाँ, ना जानें गुण-शील।
इसीलिए उपयोग में, रमते सुधी सलील ॥६२॥

मूर्तिक इन्द्रिय विषय भी, मूर्तिक हैं पर्याय।
तभी सुधी उपयोग का, करते हैं स्वाध्याय ॥६३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सर परिसर ज्यों शीत हो, सर परिसर हो शीत।
वरना अध्यातम रहा, स्वप्नों का संगीत ॥६४॥

खोया जो है अहम में, खोया उसने मोल।
खोया जिसने अहम को, खोजा धन अनमोल ॥६५॥

प्रतिभा की इच्छा नहीं, आभा मिले अपार।
प्रतिभा परदे की प्रथा, आभा सीधी पार ॥६६॥

वेग बढ़े इस बुद्धि में, नहीं बढ़े आवेग।
कष्ट-दायिनी बुद्धि है, जिसमें ना संवेग ॥६७॥

कल्प काल से चल रहे, विकल्प ये संकल्प।
अल्प काल भी मौन लूँ, चलता अन्तर्जल्प ॥६८॥

पर घर में क्यों घुस रही, निज घर तज यह भीड़।
पर नीड़ों में कब घुसा, पंछी तज निज नीड़ ॥६९॥

कहीं कभी भी ना हुआ, नदियों का संघर्ष।
मनुजों में संघर्ष क्यों? दुर्लभ क्यों? है हर्ष ॥७०॥

शास्त्र पठन ना, गुणन से, निज में हम खो जायें।
कटि पर ना, पर अंक में, मां के शिशु सो जायें ॥७१॥

दृश्य नहीं दर्शन भला, ज्ञेय नहीं है ज्ञान।
और नहीं आतम भला, भरा सुधामृत-पान ॥७२॥

समरस अब तो चख जरा, सब रस सम बन जाय।
नयनों पर उपनयन हो, हरा, हरा दिख जाय ॥७३॥

सुधी पहिनता वस्त्र को, दोष छुपाने भ्रात!
किन्तु पहिन यदि मद करे, लज्जा की है बात ॥७४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

हित-मित-नियमित-मिष्ट ही, बोल वचन मुख खोल।
वरना सब सम्पर्क तज, समता में जा 'खोल' ॥७५॥

भार उठा दायित्व का, लिखा भाल पर सार।
उदार उर हो फिर भला, क्यों ना? हो उद्धार ॥७६॥

आगम का संगम हुआ, महापुण्य का योग।
आगम हृदयंगम तभी, निश्छल हो उपयोग ॥७७॥

अर्थ नहीं परमार्थ की, ओर बढ़ें भूपाल।
पालक जनता के बनें, बनें नहीं भूचाल ॥७८॥

दूषण ना भूषण बनो, बनो देश के भक्त।
उम्र बढ़े बस देश की, देश रहे अविभक्त ॥७९॥

नहीं गुणों की ग्राहिका, रहीं इन्द्रियाँ और।
तभी जितेन्द्रिय जिन बने, लखते गुण की ओर ॥८०॥

सब सारों में सार है, समयसार उर धार।
सारा सारासार सो, विसार तू संसार ॥८१॥

विवेक हो ये एक से, जीते जीव अनेक।
अनेक दीपक जल रहे, प्रकाश देखो एक ॥८२॥

दिन का हो या रात का, सपना सपना होय।
सपना अपना सा लगे, किन्तु न अपना होय ॥८३॥

जो कुछ अपने आप है, नहीं किसी पर रूढ़।
अनेकान्त से ज्ञात हो, जिसे न जाने मूढ़ ॥८४॥

अपने अपने धर्म को, छोड़े नहीं पदार्थ।
रक्षक-भक्षक जनक सो, कोई नहीं यथार्थ ॥८५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

खण्डन मण्डन में लगा, निज का ना ले स्वाद।
फूल महकता नीम का, किन्तु कटुक हो स्वाद ॥८६॥

नीर-नीर को छोड़ कर, क्षीर-क्षीर का पान।
हंसा करता, भविक भी, गुण लेता गुणगान ॥८७॥

पक्षपात बिन रवि यथा, देता सदा प्रकाश।
सबके प्रति मुनि एक हो, रिपु हो या हो दास ॥८८॥

घने वनों में वास सो, विविध तपों को धार।
उपसर्गों का सहन भी, समता बिन निस्सार ॥८९॥

चिन्तन मन्थन मनन जो, आगम के अनुसार।
तथा निरन्तर मौन भी, समता बिन निस्सार ॥९०॥

विजितमना हो फिर हुए, महामना जिनराज।
हिम्मतवाला बन अरे ! मतवाला मत आज ॥९१॥

रसना रस की ओर ना, जा जीवन अनमोल।
गुरु -गुण गरिमा गा अरी! इसे न रस से तोल ॥९२॥

चमक दमक की ओर तू, मत जा नयना मान।
दुर्लभ जिनवर रूप का, निशि-दिन करना पान ॥९३॥

पके पत्र फल डाल पर, टिक ना सकते देर।
मुमुक्षु क्यों ना? निकलता, घर से देर सबेर ॥९४॥

नीरस हो पर कटुक ना, उलटी सो बच जाय।
सूखा हो, रुखा नहीं, बिगड़ी सो बन जाय ॥९५॥

छुआछूत की बात क्या? सुनो और तो और।
फरस रूप से शून्य हूँ, देखूँ, दिखूँ, विभोर ॥९६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दास-दास ही न रहे, सदा-सदा का दास।
कनक, कनकपाषाण हो, ताप मिले प्रभु पास ॥९७॥

आत्म-तोष में जी रहा, जिसके यश का नाप।
शरद जलद की धवलिमा, लज्जित होती आप ॥९८॥

रस से रीता हूँ, रहा, ममता की ना गन्ध।
सौरभ पीता हूँ सदा, समता का मकरन्द ॥९९॥

तव-मम तव-मम कब मिटे, तरतमता का नाश।
अन्धकार गहरा रहा, सूर्योदय ना पास ॥१००॥

समय व स्थान परिचय

बीना बारह क्षेत्र में, नदी बही सुख-चैन।
ग्रीष्मकाल का योग है, मन लगता दिन-रैन ॥१०१॥

गगन गन्ध गति गोत्र के, रंग पंचमी संग।
सूर्योदय के उदय से, मम हो प्रभु सम रंग ॥१०२॥

अंकानां वामतो गतिः अनुसार
गगन-०, गंध-२, गति-५, गोत्र-२
चैत्र वदी ५, (वी॰ नि॰ सं॰ २५२०)
श्री अतिशय क्षेत्र बीना बारह (सागर)
मंगलवार, २१. ०३.१९९५

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दोहा दोहन

मंगल भावना

सागर सम गंभीर मैं, बनूँ चन्द्र-सम शान्त।
गगन तुल्य स्वाश्रित रहूँ, हरूँ दीप-सम ध्वान्त ॥१॥

चिर संचित सब कर्म को, राख करूँ बन आग।
तप्त आत्म को शान्त भी, करूँ बनूँ गतराग ॥२॥

तन मन को तप से तपा, स्वर्ण बनूँ छविमान।
भक्त बनूँ भगवान को भजूँ, बनूँ भगवान ॥३॥

भद्र बनूँ बस भद्रता, जीवन का शृंगार।
द्रव्य-दृष्टि में निहित है, सुख का वह संचार ॥४॥

लोकेषण की चाह ना, सुर सुख की ना प्यास।
विद्यासागर बस बनूँ, करूँ स्वपद में वास ॥५॥

फूल बिछाकर पन्थ में, पर-प्रति बन अनुकूल।
शूल बिछाकर भूल से, मत बन तू प्रतिकूल ॥६॥

यम, दम, शम, सम तुम धरो, क्रमशः कम श्रम होय।
नर से नारायण बनो, अनुपम अधिगम होय ॥७॥

साधु बने समता धरो, समयसार का सार।
गति पंचम मिलती तभी, मिटती हैं गति चार ॥८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

स्वीकृत हो मम नमन ये, जय-जय-जय 'जयसेन'।
जैन बना अब जिन बनूँ, मन रटता दिन रैन ॥९॥

साधु बनो, न स्वादु बनो, साध्य सिद्ध हो जाय।
गमनागमन तभी मिटे, पाप-पुण्य खो जाय ॥१०॥

रत्नत्रय में रत रहो, रहो राग से दूर।
विद्यासागर तुम बनो, सुख पावो भरपूर ॥११॥

गोमटेश के चरण में, नत हो बारम्बार।
विद्यासागर मैं बनूँ, भव-सागर कर पार ॥१२॥

ध्यान के गवाक्ष से

यही तत्त्व दर्शन रहा, निज दर्शन का हेतु।
जिन-दर्शन का सार है, भव-सागर का सेतु ॥१३॥

मेटे वाद-विवाद को, निर्विवाद स्याद्वाद।
सब वादों को खुश करे, पुनि-पुनि कर संवाद ॥१४॥

तजो रजो गुण-साम्य को, सजो भजो निज धर्म।
शर्म मिले भव दुख मिटे, आशु मिटे वसु कर्म ॥१५॥

शाश्वत निधि का धाम हो, क्यों बनता तू दीन।
है उसको बस देख ले, निज में होकर लीन ॥१६॥

समय-समय 'पर' समय में, सविनय समता धार।
समल संग सम्बन्ध तज, रम जा सुख पा सार ॥१७॥

भव-भव भव-वन भ्रमित हो, भ्रमता-भ्रमता काल।
बीता अनन्तवीर्य बिन, बिन सुख, बिन वृष-सार ॥१८॥

पर पद, निज पद, जान तज, पर पद, भज निज काम।
परम पदारथ फल मिले, पल-पल जप निज नाम ॥१९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

निज गुण कर्ता आत्म है, पर कर्ता पर आप।
इस विधि जाने मुनि सभी, निज-रत हो तज पाप ॥२०॥

पाप प्रथम मिटता प्रथम, तजो पुण्य-फल भोग।
पुनः पुण्य मिटता धरो, आतम-निर्मल योग ॥२१॥

राग-द्वेष अरु मोह से, रंजित वह उपयोग।
वसु विध-विधि का नियम से, पाता दुख कर योग ॥२२॥

विराग समकित मुनि लिए, जीता जीवन सार।
कर्मास्त्रव से तब बचे, निज में करें विहार ॥२३॥

रागादिक के हेतु को, तजते अम्बर छाँव।
रागादिक पुनि मुनि मिटा, भजते संवर भाव ॥२४॥

साक्षी बनकर विषय का, करते मुनिवर भोग।
पूर्व-कर्म की निर्जरा, हो तब शुचि उपयोग ॥२५॥

ज्ञान दुःख का मूल है, ज्ञान ही भव का कूल।
राग सहित प्रतिकूल है, राग-रहित अनुकूल ॥२६॥

सुनते-सुनते शास्त्र को, बधिर हो गये कान।
फिर भी तृष्णा न मिटी, प्रयाण-पथ पर प्राण ॥२७॥

नयन मनोहर क्षेत्र है, नैनागिरि अभिराम।
जहाँ विचरते सुर सदा, ऋषिमन ले विश्राम ॥२८॥

बिना भीति विचरूँ सदा, वन में ज्यों मृगराज।
ध्यान धरूँ परमात्म का, निश्चल हो गिरिराज ॥२९॥

रवि सम पर-उपकार मैं, करूँ समझ कर्तव्य।
रखूँ न मन में मान-मद, सुन्दर हो भवितव्य ॥३०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सदा संग बिन पवन सम, विचरूँ मैं निस्संग।
मंत्र जपूँ निज तंत्र का, नष्ट शीघ्र हो अंग ॥३१॥

द्रव्य हेय जड़मय तजूँ, ध्येय बना निज द्रव्य।
कीलित कर निज चित्त को, पाऊँ शिवसुख दिव्य ॥३२॥

तामस बस प्रतिलोम हो, मुझमें चिर बस जाय।
है यह हार्दिक भावना, मोह सभी नश जाय ॥३३॥

शान्त करूँ सब पाप को, हरूँ ताप बन शान्त।
गति आगति रति सब मिटे, मिले आप निज प्रान्त ॥३४॥

चाहो शाश्वत मोक्ष को, चाहो केवलज्ञान॥
संग त्याग कर नित करो, निज का केवल ध्यान ॥३५॥

ज्योतिर्मुख को नित नमूँ, छूटे भव-भव जेल।
सत्ता मुझको मम दिखे, ज्योति-ज्योति का मेल ॥३६॥

विशद पूर्ण मम ज्ञान हो, विभाव मुझ से दूर।
ध्यान विषय का तव स्मरूँ, स्वभाव सुख से पूर ॥३७॥

तन-मन से औ वचन से, पर का कर उपकार।
नीति रीति तू पाल ले, शाश्वत शिव उपहार ॥३८॥

सन्मति को मम नमन हो, मम मति सन्मति होय।
सुर नर पशु गति सब मिटे, गति पंचम गति होय ॥३९॥

विकसित हो जीवनलता, विलसित गुण के फूल।
ध्यानी मौनी सूंघता महक उठे आमूल ॥४०॥

रग-रग से करुणा झरे, दुखी जनों को देख।
विश्व सौख्य में अनुभवूँ, स्वार्थ-सिद्धि की रेख ॥४१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मणियों में वर नील ज्यों, मुनि गुण गण में शील।
शील बिना ना शिव धरो, शील करो मत ढील ॥४२॥

शील बिना ना ज्ञान हो, ज्ञान बिना ना शील।
ज्ञान निहित है शील में, निहित ज्ञान में शील ॥४३॥

मरहम पट्टी बाँध के, व्रण का कर उपचार।
ऐसा यदि ना बन सके, डंडा तो मत मार ॥४४॥

तन-मन से औ वचन से पर का कर उपकार।
रवि सम जीवन बस बने, मिलता शिव उपहार ॥४५॥

मंगलमय जीवन बने, छा जाये सुख छाँव।
जुड़े परस्पर दिल सभी, टले अमंगल भाव ॥४६॥

विषय कषाय तजो भजो, जरा निर्जरा धार।
तपाओ निज को तो मिले, अजरामर पद सार ॥४७॥

रवि सम पर उपकार में, रहो विलीन सदैव।
विश्व शान्ति वरना नहीं, यों कहते जिनदेव ॥४८॥

विषय विषम-विष है सुनो, विष सेवन से मौत।
विषय-कषाय विसार दो, स्वानुभूति सुख-स्त्रोत ॥४९॥

'ही से 'भी की ओर ही, बढ़ें सभी हम लोग।
छह के आगे तीन हो, विश्व शान्ति का योग ॥५०॥

यही प्रार्थना वीर से, अनुनय से कर जोर।
हरी-भरी दिखती रहे, धरती चारों ओर ॥५१॥

प्रीति-भीति सुख-दुख नसे, धरे न चेतन-रीति।
अजीव तन धन आदि ये, तुम समझो भव भीत ॥५२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विभाव परिणति यह सभी, पुण्य रहो या पाप।
स्वभाव मिलता, जब मिटे, पाप-पुण्य परिताप ॥५३॥

समता भज, तज प्रथम तू, पक्षपात परमाद।
स्याद्वाद आधार ले, 'समयसार' पढ़ बाद ॥५४॥

विभो! अर्ज मंजूर हो, सुखी रहें सब जीव।
ध्यावें निज के विषय को, तज के विषय सदीव ॥५५॥

रहो स्वपरोपकार में, रत निश्चय उर धार।
चिर अपरिचित चित्त में, चिर पुनि करो विहार ॥५६॥

रस स्पर्शादिक है नहीं, मुझमें केवल ज्ञान।
चिर से हूँ चिर और हूँ, हूँ निज के बल जान ॥५७॥

तिल में जिस विध तैल है, अग्नि काष्ठ में जान।
शंकर तन में है रहा, जरा सोच कल्याण ॥५८॥

कुन्दकुन्द को नित नमूँ, हृदय कुन्द खिल जाय।
परम सुगन्धित महक में, जीवन मम घुल जाय ॥५९॥

महके अगुरु सुगन्ध है, श्री गुरु समन्तभद्र।
श्रीपद में अर्पित रहे, गन्धहीन मम छन्द ॥६०॥

रहूँ रमूँ निज में सदा, भ्रमूँ न पर में भूल।
चिदानन्द का लाभ लूँ, पर तो सब कुछ भूल ॥६१॥

नोबत दुख की अब नहीं, आयेगी मतिमान।
दया-धर्म उर धारता, शिव पथ पर गतिमान ॥६२॥

मुनिवर की वह नग्नता रत्नत्रय का धाम।
दर्शन प्राभृत में सही पाता दर्शन नाम ॥६३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पूज्य दिगम्बर-पन अतः पूजत पाप पलाय।
चरित ज्ञान दृग मिलन है दर्शन आप सुहाय ॥६४॥

सागर वो कचरा तजे, समझ उसे निस्सार।
गलती करता क्यों भला, तू अघ को उर धार॥६५॥

तन-मन-धन से तुम सभी, पर के दुःख निवार।
शम-दम-यम युत ही सदा, निज में करो विहार ॥६६॥

सुरासुरों से हैं सदा, पूजित जिनके पाद।
'पूज्यपाद' को नित नमूँ, पाऊँ परम प्रसाद ॥६७॥

तन मिला तुम तप करो, करो कर्म का नाश।
रवि-शशि से भी अधिक है, तुममें दिव्य प्रकाश ॥६८॥

प्रमाद जब तक तुम करो, पर कर्तापन मान।
तब तक विधि बन्धान हो, हो न समय का ज्ञान ॥६९॥

बिन रति-रस चख जी रहे, निज घर में कर वास।
निज अनुभव-रस पी रहे, उन मुनि का मैं दास ॥७०॥

मात्र कर्म के उदय से, नहिं वसु विध विधि-बंध।
रागादिक ही नियम से, बंध हेतु, सुन-अंध ॥७१॥

वसुविध विधि का विलयमय, निलय समय का मोक्ष।
व्यक्त-रूप है सिद्ध में, तुझ में वही परोक्ष ॥७२॥

दृग व्रत-समता धार के, द्रव्य-भव्य भज आप।
निरा निरामय आत्म हो, रूप द्रव्य तज आप ॥७३॥

सुर, सुर-गुरु तक, गुरु चरण-रज सर पर सुचढ़ाय।
यह मुनि-मन गुरु भजन में,निशि-दिन क्यों न लगाए ॥७४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

रवि से बढ़कर तेज है, शशि से बढ़कर ज्योत।
झाँक देख निज में जरा, सुख का खुलता स्त्रोत ॥७५॥

पर में सुख कहिं है नहीं, खुद ही सुख की खान।
निजी नाभि में गंध है, मृग भटके बिन ज्ञान ॥७६॥

बंध किये बिन बंध का, बंधन टूटे आप।
महिमा यह सब साम्य की, विराग दृष्टि की छाप ॥७७॥

बन्ध तत्त्व का ज्ञान ही, केवल मोक्ष न देत।
मोह त्याग ही मोक्ष का, साक्षात् स्वाश्रित हेत ॥७८॥

चुन-चुन इनमें उचित को, अनुचित मत चुन भूल।
समयसार का सार है, समता बिन सब धूल ॥७९॥

दृग व्रत चिति की एकता, मुनिपन साधक भाव।
साध्य सिद्ध शिव सत्य है, विगलित बाधक भाव ॥८०॥

साध्य साधक ये सभी, सचमुच में व्यवहार।
निश्चय नय-नय नयन में, समय-समय का सार ॥८१॥

बाबा बड़े बड़ी कृपा, की मुझ पे आदीश।
पूर्ण हुई मम कामना, पाकर जिन आशीष ॥८२॥

आत्मकथा तज क्यों करो, नित विकथा निस्सार।
पय तज पीते विष भला, क्यों हो निज उद्धार ॥८३॥

चन्दर-चन्दन चाँदनी, से जिन धुनि अति शीत।
उसका सेवन मैं करूँ, मन वच तन कर नीत ॥८४॥

सूत्र सूचना, सुन, सुना रहा न पर में स्वाद।
सूत्र-ज्ञान कर, कर स्वयं तप, न कभी परमाद ॥८५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जिनवर का यह सूत्र है, सुपथ प्रकाशक दीप।
धारन कर, कर में दिखे सुख कर मोक्ष समीप ॥८६॥

प्रतिदिन सविनय चाव से, इसको पढ़ तू! भव्य।
सुर-सुख शिव-सुख नियम से, पाते अक्षय द्रव्य ॥८७॥

मेरा तेरा पन मिटे, भेदभाव का नाश।
रीति-नीति सुधरे सभी, वेद-भाव में वास ॥८८॥

भाग्य भला वह क्या रहा, उदय कर्म का मात्र।
वहाँ देख मत देख ले, जहाँ धर्म का पात्र ॥८९॥

ना तो पर पर रोष हो, ना कर्मों का दोष।
है अपना अपराध यह, खोया है निज होश ॥९०॥

सदा सरलता साध लो, और कुटिलता त्याग।
बनो धवल तुम हंस से, विरागता से राग ॥९१॥

काले बादल बन तपी-भूपर बरसो आप।
भरे पाप-घट पुण्य में, बदले अपने आप ॥९२॥

लाभ उलटता हो भला, भला उलटता लाभ।
हो सब ज्यों का त्यों सदा, भला रहे बदलाव ॥९३॥

जहाँ अनेकों पूज्य जिन, धाम एक से एक।
रवि निज किरणों से करे, प्रतिदिन सौ अभिषेक ॥९४॥

रामटेक को देखते, प्रकटे स्व पर विवेक।
विराम स्वातम में करो, विघटे विपद अनेक ॥९५॥

गगन चूमता शिखर है भव्य जिनालय भ्रात!
विघन हरण मंगलकरण, महुवा में विख्यात ॥९६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

बहती कहती है नदी 'पूर्णा' जिसके तीर।
पार्श्वनाथ के दर्श से, दिखता भव का तीर ॥९७॥

मुक्तागिरि पर मुक्त मनि, साढे तीन करोड़।
मुक्तागिरि को नित नमूँ, नत-सिर हो कर-जोड़ ॥९८॥

सारे सागर क्षार हैं, मम गुरु मधुर अपार।
नमूँ ज्ञान सागर गहूँ, भवसागर का पार ॥९९॥

नेमिनाथ को नित नमूँ, नेमिचन्द मुनि-याद।
नेमिचन्द मुनि को नमूँ, नेमिनाथ बुनियाद ॥१००॥

निजी भाव ही दुःख है, निजी भाव सुख कूप।
भव-भव भ्रमत भाव से, भूल हरे निज रूप ॥१०१॥

दुःख से बचना चाहते, तजो परिग्रह भाव।
नग्न हुए बिन शिव नहीं, बिना निजातम भाव ॥१०२॥

चार चाँद चारित्र से जीवन में लग जाए।
लगभग तम भग ज्ञान शशि उगत-उगत उगजाए ॥१०३॥

समकित-संयम आचरण, इस विधि द्विविध बताय।
वसुविधि-विधि नाशक तथा सुरसुख शिवसुख दाय ॥१०४॥

रत्नत्रय ये द्विविधि है निश्चय और व्यवहार।
प्रथम साध्य साधक द्वितीय रत्नत्रय उर धार ॥१०५॥

नग्न दिगम्बर बिन बने, रत्नत्रय नहिं होय।
रत्नत्रय के बिन कभी, निज सुख मोक्ष न होय ॥१०६॥

नग्न मात्र बाहर बना, भीतर भरी कषाय।
शिव सुख पाता वह नहीं,बसता नहीं अकाय ॥१०७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

बाहर-भीतर एकसा, यथाजात जिन लिंग।
दर्पण सम शुचि यदि बना, वह नर बने अलिंग ॥१०८॥

रहा तपोवन नियम से रम्य क्षेत्र थूबौन।
जहाँ ध्यान में उतरता मुनि का मन हो मौन ॥१०९॥

शान्तिनाथ जिननाथ हैं दर्शन से अति हर्ष।
धारा वर्षायोग उन चरणन में इस वर्ष ॥११०॥

विस्मृत मम हो विगत सब विगलित हो मद मान।
ध्यान निजातम का करूँ करूँ निजी गुण गान ॥१११॥

सादर शाश्वत सारमय समयसार को जान।
गट-गट झट-पट चाव से करूँ निजामृत पान ॥११२॥

रम-रम शम दम में सदा मत रम पर में भूल।
रख साहस फलतः मिले भव का पल में कूल ॥११३॥

चिदानन्द का धाम है ललाम आतमराम।
तन मन से न्यारा दिखे मन पे लगे लगाम ॥११४॥

निरा निरामय नव्य मैं नियत निरंजन नित्य।
यह केवल नियमित जपो तज दो विषय अनित्य ॥११५॥

मन वच तन में सौम्यता धारो बन नवनीत।
सार्थक तब जप तप बने प्रथम बनो भवभीत ॥११६॥

सार यही जिनशास्त्र का सादर समता धार।
रागी बंधता कर्म से विराग भवदधि पार ॥११७॥

खुद पर्वत यों गा रहा, ले कुण्डल आकार।
कुण्डलगिरि में हूँ खड़ा, कौन करे नाकार? ॥११८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सार्थक कुण्डलगिरि रहा, सुखकर कोनी क्षेत्र।
एक झलक में खुल गए, मन के मौनी नेत्र ॥११९॥

सतत सतपुड़ा कह रहा, असत् त्याग सत् धार।
मुक्तागिरि आ देख लो, दिखता शिरपुर द्वार ॥१२०॥

गगन-चूँमते शिखर हैं, रहे एक से एक।
युवा मेघ ही जल भरे, करते हैं अभिषेक ॥१२१॥

रवि के व्रत दो, प्रथम तो-प्रतिदिन उठें प्रभात।
मुक्तागिरि का दर्श ले, फिर यात्रा की बात ॥१२२॥

समय व स्थान परिचय
श्री दिग० जैन अतिशय क्षेत्र मढ़ियाजी, जबलपुर (म.प्र.)
सन् १९८४

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भूमिका

प्रातःकालीन सायंकालीन सामायिक के पश्चात् नसीराबाद में २५.११.१९७२ से २५.०५.१९७३ तक श्रावक श्री गंभीरमलजी सेठी आध्यात्मिक, सैद्धान्तिक एवं वैराग्यवर्धक भजन, कविवर श्री बनारसी-दासजी, दौलतरामजी, द्यानतरायजी, भूधरदासजी, महाचन्द्रजी, भागचन्द्रजी, जिनेश्वरदासजी आदि अनेक आध्यात्मिक कवियों, विद्वानों द्वारा रचित भजनों को सुमधुर ध्वनि में गाते थे। जिन्हें क्षपक श्री ज्ञानसागरजी महाराज एवं समस्त संघ एकाग्रचित्त होकर सुनते थे।

बनारसीदासजी का एक भजन–

''चेतन उल्टी चाल चले,
जड़ संगति सों जड़ता व्यापी।
निजगुण सकल ढले...''

उक्त भजन को सुनकर पूज्य आचार्यश्री विद्यासागर-जी महाराज ने भी उन दिनों दस भजनों की रचना की थी।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आध्यात्मिक भक्ति गीत

मंगल कामना

दोहा

यही प्रार्थना वीर से, अनुनय से कर जोर।
हरी भरी दिखती रहे, धरती चारों ओर ॥१॥

विषय कषाय तजो भजो, जरा निर्जरा धार।
ध्याओ निज को तो मिले, अजरामर पद सार ॥२॥

सागर वो कचरा तजे, समझ उसे निस्सार।
गलती करता क्यों भला, तू अघ को उर धार ॥३॥

रवि सम पर उपकार में, रहो विलीन सदैव।
विश्व शान्ति वरना नहीं, यों कहते जिनदेव ॥४॥

रग-रग से करुणा झरे दुखीजनों को देख।
चिर रिपु लख ना नयन में, चिता रुधिर की रेख ॥५॥

तन-मन-धन से तुम सभी, पर का दुःख निवार।
शम-दम-यम युत हो सदा, निज में करो विहार ॥६॥

तरणि ज्ञानसागर गुरो! तारो मुझे ऋषीश।
करुणाकर! करुणा करो, कर से दो आशीष ॥७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

१. अब मैं मम मन्दिर में रहूँगा

अमिट, अमित अरु अतुल, अतीन्द्रिय,
अरहन्त पद को धरूँगा।
सज, धज निज को दश धर्मों से-
सविनय सहजता भजूँगा॥
अब मैं....॥

विषय-विषम-विष को तजकर उस-
समरस पान मैं करूँगा।
जनम, मरण अरु जरा जनित दुख -
फिर क्यों वृथा मैं सहूँगा? ॥
अब मैं....॥

दुख दात्री है इसीलिए अब -
न माया-गणिका रखूँगा।
निसंग बनकर शिवांगना संग -
सानन्द चिर मैं रहूँगा॥
अब मैं....॥

भूला, पर में फूला, झूला-
भावी भूल ना करूँगा।
निजमें निजका अहो! निरन्तर -
निरंजन स्वरूप लखूँगा॥
अब मैं....॥

समय, समय पर समयसारमय -
मम आतम को भजूँगा।
साहुकार जब मैं हूँ, फिर क्यों-
सेवक का कार्य करूँगा?॥
अब मैं....॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

२. पर भाव त्याग तू बन शीघ्र दिगम्बर

छिदजाय, भिदजाय, गलजाय, सड़जाय,
सुधी कहे फिर भी विनश्वर जड़काय।
करें परिणमन जब निज भावों से सब,
देह नश रहा अब मम मरण कहाँ कब?॥
तब न ये, सर्वथा भिन्न देह अम्बर,
परभाव त्याग तू बन शीघ्र दिगम्बर ॥१॥

बन्ध कारण अतः रागादि तो हेय,
वह शुद्धातम ही अधुना उपादेय,
''मेरा न यह देह'' यह तो मात्र ज्ञेय,
ऐसा विचार हो, मिले सौख्य अमेय।
दुख की जड़ आस्त्रव, शिव दाता संवर,
परभाव त्याग तू बन शीघ्र दिगम्बर ॥२॥

अब तक पर में ही तूने सुख माना,
इसलिये भयंकर पड़ा दुख उठाना।
वह ऊँचाई नहीं जहाँ से हो पतन
तथा वह सुख नहीं जहाँ क्लेश चिंतन।
इक बार तो जिया लख निज के अन्दर,
परभाव त्याग तू बन शीघ्र दिगम्बर ॥३॥

स्व-पर बोध बिन तो! बहुत काल खोया,
हाय! सुख न पाया दुःख बीज बोया।
'विद्या' आँख खोल समय यह अनमोल,
रह निज में अडोल, अमृत-विष न घोल।
शुद्धोपयोग ही त्रिभुवन में सुन्दर,
परभाव त्याग तू बन शीघ्र दिगम्बर ॥४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

३. मोक्ष-ललना को जिया! कब वरेगा?

स्वरूप-बोध बिन, सहता दुख निशिदिन,
यदि उसे पाता, तू बन सकता जिन।
नित निजानुमनन कर व्यामोह हनन,
चाहता न मरण यदि न जरा न जनन।
आशा-गर्त यह कदापि न भरेगा,
मोक्ष-ललना को जिया! कब वरेगा? ॥१॥

सुखदाता नहीं मात्र वस्त्र मुंचन,
दुखहर्ता नहीं मात्र केश लुंचन।
करे राग-द्वेष जो धर नग्न-भेष,
वे अहो जिनेश! पावें न सुख लेश॥
आत्मावलोकन अरे! कब करेगा,
मोक्ष-ललना को जिया! कब वरेगा? ॥२॥

करता न प्रमाद, नहीं हर्ष विषाद,
लेता वही मुनि, नियम से निज-स्वाद।
सुमणि तज कांच में, क्यों तू नित रमता?
पी मद, अमृत तज, क्यों भव में भ्रमता?
निज-भक्ति-रस कब, तुझमें झरेगा?
मोक्ष-ललना को जिया! कब वरेगा? ॥३॥

तज मूढ़ता त्रय, भज सदा रत्नत्रय,
यदि सुख चाहता, ले ले, झट स्वाश्रय।
अब 'विद्या' जाग, अरे! शिव-पंथ लाग,
शीघ्र राग त्याग, बन तू वीतराग।
कब तक लोक में, जनम ले मरेगा ?
मोक्ष-ललना को जिया! कब वरेगा? ॥४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

४. भटकन तब तक भव में जारी

विषय-विषम विष को तुम त्यागो,
पी निज समरस को भवि! जागो।
निज से निज का नाता जोड़ो,
परसे निज का नाता तोड़ो॥
मिले न तब तक वह शिवनारी,
निज-स्तुति जब तक लगे न प्यारी ॥१॥

जो रति रखता कभी न पर में,
सुख का बनता घर वह पल में।
वितथ परिणमन के कारण जिय!
न मिले तुझको शिव-ललना-प्रिय॥
जप, तप तब तक ना सुखकारी,
निज स्तुति जब तक लगे न प्यारी ॥२॥

सज, धज निजको दश धर्मों से
छूटेगा झट अठ कर्मों से,
मैं तो चेतन अचेतन ही तन,
मिले शिव ललना, कर यों चिंतन॥
भटकन तब तक भव में जारी,
निज-स्तुति जब तक लगे न प्यारी ॥३॥

अजर अमर तू निरंजन देव,
कर्ता धर्ता निज का सदैव।
अचल अमल अरु अरूप, अखंड,
चिन्मय जब है फिर क्यों घमंड?
'विद्या' तब तक भव दुख भारी,
निज-स्तुति जब तक लगे न प्यारी ॥४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

५. बनना चाहता यदि शिवांगना पति

कर कषाय शमन, पंच इन्द्रिय दमन,
नित निज में रमण, कर स्व को ही नमन।
जिया! फिर भव में नहीं पुनरागमन,
ओ! क्या बताऊँ! बस चमन ही चमन॥
समता-सुधा पी, तज मिथ्या परिणति,
बनना चाहता यदि शिवांगना-पति ॥१॥

केवल पटादिक वह मूढ़ छोड़ता,
सुधी कषाय-घट को, झटिति तोड़ता।
गिरि-तीर्थ करता वह जिन दर्शनार्थ,
जिनागम जो मुनि पढ़ा नहीं यथार्थ॥
मद ममतादि तज बन तू निसंग यति,
बनना चाहता यदि शिवांगना-पति ॥२॥

सुख दायिनी है यह समकित-मणिका,
दुख दायिनी है वह माया-गणिका।
पीता न यदि तू निजानुभूति-सुधा,
स्वाध्याय, संयम, तप कर्म भी मुधा॥
दिन रैन रख तू केवल निज में रति,
बनना चाहता यदि शिवांगना पति ॥३॥

उपादान सदृश होता सदा कार्य,
इस विधि आचार्य बताते अयि! आर्य!
'विद्या' सुनिर्मल, - निजातम अतः! भज,
परम समाधि में स्थित हो कषाय तज॥
संयम भावना बढ़ा दिन प्रति अति,
बनना चाहता यदि शिवांगना पति ॥४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

६. चेतन निज को जान जरा

आत्मानुभव से नियम से होती
सकल करम निर्जरा
दुख की शृंखला मिटे भव फेरी
मिट जाय जनन जरा
परमें सुख कहीं है नहीं जग में
सुखतो निज में भरा
मद ममतादि तज, धार शम, दम, यम
मिल जाये शिव सौख्य खरा
यदि भव परम्परा से हुआ घबरा
तज देह नेह बुरा
तज विषमता झट, भज सहजता तू
मिल जाय मोक्ष पुरा
देह त्यों बंधन इस जीव को ज्यों
ज्यों तोते को पिंजरा
बिन ज्ञान निशिदिन तन धार भव-वन
तू कई बार मरा
भटक, भटक जिया सुख हेतु भव में
दुख सहता मर्मरा
चम चम चमकता निजातम हीरा
काया काँच कचरा

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

७. समकित लाभ

सत्य अहिंसा जहाँ लस रही, मृषा, हिंसा को स्थान नहीं।
मधुर रसमय जीवन वही, फिर स्वर्ग मोक्ष तो यही मही॥
कितनी पर हत्या हो रही, गायें कितनी रे! कट रहीं।
तभी तो अरे! भारत मही, म्लेच्छ खण्ड होती जा रही॥
लालच-लता लसित लहलहा, मनुज-विटप से लिपटी अहा!
भयंकर कर्म यहाँ से हो रहा, मानव दावन है बन रहा॥
केवल धुन लगी धन, धन, धन, चाहे कि धनिक हो या निर्धन।
लिखते लेकिन वे साधु जन, वह धन तो केवल पुद्गल कण॥
एकता नहीं मात्सर्य भाव, जग में है प्रेम का अभाव।
प्रसारित जहाँ तामस भाव, घर किया इनमें मनमुटाव॥
याचना जिनका मुख्य काम, बिना परिश्रम चाहते दाम।
सत्पुरुष कहें वे श्रीराम, पुरुषार्थी को मिले आराम॥
कहाँ तक कहें यह कहानी, कहते कहते थकती वाणी।
रह गई दूर वीर वाणी, विस्मरित हुई, हुई पुराणी॥
रसातल जा मत दुःख भोगो, मुधा पाप बीज मत बोओ।
हाय! अवसर वृथा मत खोओ, मोह नींद में कब तक सोओ॥
युगवीर का यही सन्देश, कभी किसी से करो न द्वेष।
गरीब हो या धनी नरेश, नीच उच्च का अन्तर न लेश॥
वीर नर तो वही कहाता, कदापि पर को नहीं सताता।
रहता भूखा खुद न खाता, भूखे को रोटी खिलाता॥
क्लब यह, करे सद् 'विद्याभ्यास' रहे वीर चरणों में खास।
बस मुक्ति रमा आये पास, प्रेम करेगी हास विलास॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

८. अहो! यही सिद्धशिला

निगोद में रचा पचा,
कोई भी भव न बचा।
फिर भी सुख का न शोध,
हुआ रहा मैं अबोध! ॥१॥

प्रभो सुकृत उदित हुआ,
फलतः मैं मनुज हुआ।
दुर्लभ सत संग मिला,
मनो मिली सिद्धशिला ॥२॥

फिर गुरु उपदेश सुना,
सुजागृत हुआ अधुना।
ज्ञात हुआ स्व-पर भेद,
व्यर्थ करता था खेद ॥३॥

विदित हुआ मैं चेतन,
ज्ञान गुण का निकेतन।
किन्तु तन मन अचेतन,
करें न सुख दुख वेदन ॥४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चेतन चेत चकित हो,
स्वचिंतन वश मुदित हो।
यों कहता मैं भूला,
अब तक पर में फूला ॥५॥

अब सर्वत्र उजाला,
शिव पथ मिला निराला।
किस बात पर मुझे डर,
जब जा रहा स्वीय घर ॥६॥

यह है समकित प्रभात,
न रही अब मोह रात।
बोध-रवि-किरण फूटी,
टली-भ्रम-निशा झूठी ॥७॥

समता अरूणिमा बढ़ी,
उन्नत शिखर पर चढ़ी।
निज दृष्टि निज में गड़ी,
धन्यतम है यह घड़ी ॥८॥

अनुकम्पा पवन भला,
सुखद पावन वह चला।
विषमता कंटक नहीं,
शिवपथ अब स्वच्छ सही ॥९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

यह सुख की परिभाषा,
न रहे मन में आशा।
ईदृश हो प्रति भाषा,
तो मैं रहूँ न प्यासा ॥१०॥

कुछ नहीं अब परवाह,
जब मिटी सब कुछ चाह।
दुख टला, निज सुख मिला,
मम उर-दृग-पद्म खिला ॥११॥

'विद्या' अविद्या छोड़,
कषाय कुंभ को तोड़।
कर रहा उससे प्यार,
जो सत चेतना नार ॥१२॥

❑❑❑

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

९. जैनधर्म के बीस मंत्र

(विश्व धर्म)

राजा प्रजा हित करे पर स्वार्थ त्यागे,
देता प्रकाश रवि है कुछ भी न माँगे।
कर्तव्य मान कर तू कर साधु सेवा,
पाते पुनः परम पावन बोध मेवा ॥१॥

ये साधु सेवक कहीं मिलते यहाँ हैं,
जो जात रूप धरते जग में अहा हैं।
प्रत्येक नाग मणि से कब शोभता है,
प्रत्येक नाग कब मौक्तिक धारता है ॥२॥

मैं काय से वचन से मन से सदैव,
सौभाग्य मान करता बुध साधु सेवा।
होऊँ अबन्ध भव बंधन शीघ्र टूटे,
विज्ञान की किरण मानस मध्य फूटे ॥३॥

ज्यों ज्यों विकास धन का बढ़ता चलेगा,
त्यों त्यों प्रलोभ बढ़ता बढ़ेगा।
पा सैकड़ों कनक निर्मित पर्वतों को,
होगी न तृप्ति फिर भी तुम लोभियों को ॥४॥

'राष्ट्रानुकूल' चलना 'कर' ना चुराना,
ले चौर्य द्रव्य नहिं चोरन को लुभाना।
धंधा मिलावट करो न, आचौर्य्य पालो,
ना नाप तौल नकली सहसा चला लो ॥५॥
है वस्तु का धरम तो उसका स्वभाव,

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सच्ची क्षमादि 'दशलक्षण' धर्म नाव।
ज्ञानादि 'रत्नत्रय' धर्म सुखी बनाता,
है विश्वधर्म त्रस स्थावर प्राण त्राता ॥६॥

है एक का वह अनादर सर्व का है,
है एक का यह समादर विश्व का।
आघात मूल पर हो तरु सूख जाता,
दो मूल में सलिल, पूरण फूल जाता ॥७॥

जो भी हिताहित यहाँ निज के लिए हैं,
वे ही सदैव समझो पर के लिए हैं।
है 'जैनशासन' यही करुणा सिखाता,
सत्ता सभी सदृश है जग को दिखाता ॥८॥

हिंसा मदीय यह आतम ही अहिंसा,
सिद्धान्त के वचन हैं कर लो प्रशंसा।
ज्ञानी अहिंसक वही मुनि अप्रमादी,
हा, सिंह से अधिक हिंसक हो प्रमादी ॥९॥

जैसा तुम्हें दुख कदापि नहीं सुहाता,
वैसा अभीष्ट पर को दुख हो न पाता।
जानो उन्हें निज समान दया दिखाओ,
सम्मान मान उनको मन से दिलाओ ॥१०॥

सन्तोष कोष गत रोष अदोष ज्ञानी,
निःशल्य शाश्वत दिगम्बर है अमानी।
नीराग निर्मद निन्तात प्रशान्त नामी,

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आत्मा मदीय नय निश्चय से अकामी ॥११॥

जो अंतरंग बहिरंग निसंग नंगा,
होता दुखी नहि सुखी बस नित्य चंगा।
भाई वही वर अकिंचन धर्म पाता,
पाता स्वकीय सुख को अघ को खपाता ॥१२॥

है मांस के अशन से मति दर्प पाता,
तो दर्प से मनुज को मद पान भाता,
है मद्य पीकर जुवा तक खेल लेता,
यों सर्व दोष करके दुख मोल लेता ॥१३॥

जो मद्यपान करते मदमत्त होते,
वे निन्द्य कार्य करते दुख बीज बोते।
सर्वत्र दुख सहते दिन रैन रोते,
कैसे बने फिर सुखी जिन धर्म खोते ॥१४॥

रे मद्यपान पर नारि कुशील खोरी,
अत्यन्त क्रूर तम दंड शिकार चोरी।
भाई असत्यमय भाषण द्यूत क्रीड़ा,
ये सात हैं व्यसन दें दिन रैन पीड़ा ॥१५॥

भू-गो सुता विषय में न असत्य लाना,
'झूठी गवाह' न धरो हर को दबाना।
यों स्थूल सत्य व्रत है यह पंच धारे,
मोक्षेच्छ श्रावक जिसे रुचि संग धारे ॥१६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मिथ्योपदेश न करो सहसा न बोलो,
'स्त्री' का रहस्य अथवा पर का न खोलो।
ना कूट लेखन लिखो कुटिलाइता से,
यों स्थूल सत्य व्रतधार बचो व्यथा से ॥१७॥

पाया इसे न अबलों इसको न पाना,
मैंने इसे कर लिया न इसे कराना।
ऐसा प्रमाद करते नहिं सोचना है,
आ जाय काल कब ओ नहिं सूचना है ॥१८॥

ना क्रोध के निकट प्रेम कदापि जाता,
है मान से विनय शीघ्र विनाश पाता।
माया विनष्ट करती जग मित्रता को,
आशा विनष्ट करती सब सभ्यता को ॥१९॥

संसार को प्रिय लगे प्रिय बोल बोलो,
सद्ध्यान से तप तपो दृग पूर्ण खोलो।
सिद्धान्त को गुरुकुली बनकर पढ़ोगे,
'विद्या' सभी श्रुत विशारद जो बनोगे ॥२०॥

१०. चेतन निज को जान जरा

आत्मानुभव से नियम से होती, सकल करम निर्जरा।
दुख की शृंखला मिटे भव फेरी, मिट जाय जनन जरा॥

पर में सुख कहीं है नहीं जग में, सुख तो निज में भरा।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मद ममतादि तज धार शम दम यम मिले शिव सौख्यखरा॥

यदि भव परम्परा से हुआ घबरा तज देह नेह बुरा।
तज विषमता झट, भज सहजता तू मिल जाये मोक्ष पुरा॥

देह त्यों बंधन इस जीव को ज्यों तोते को पिंजरा।
बिन ज्ञान निशि दिन तन धार भव, बन तूं कई बार मरा॥

भटक भटक जिया सुख हेतु भव में दुःख सहता मर्मरा।
चम चम चमकता निजातम हीरा काय काँच कचरा॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भूमिका

गुरुदेव द्वारा लिखित पाण्डुलिपियों का अवलोकन करने का सौभाग्य मढ़ियाजी में प्राप्त हुआ। उसमें दस धर्मों पर पद्यात्मक छन्द प्राप्त हुए और लगा कि यह प्रकाशित नहीं हुए एवं कन्नड़-भाषी गुरुदेव की हिन्दी भाषा की आरम्भिक अवस्था को भी बता रहे हैं। मन हर्षित हो गया। सौभाग्य से यह सामग्री गुरुदेव के पास ले जाकर उनसे वार्ता करने का भी अवसर मिला। जब गुरुजी से बात की कि–आचार्यश्री जी यह देखिये दस धर्मों पर आपके द्वारा रचित छन्द प्राप्त हुए हैं। (गुरुजी मन्द मुस्कुराते हुए) बोले– ''अरे! यह तो उस समय के हैं, जब हमें प्रवचन करना नहीं आता था, हम ये छन्द बनाकर ले जाते थे और उसके आधार पर प्रवचन कर आते थे।'' अर्थात् यह रचना गुरुदेव की हिन्दी भाषा की प्रथम रचना है, जिसे बिना सम्पादन किये जैसे के तैसे ही पाठकों के बीच प्रस्तुत किया जा रहा है। इससे गुरुदेव के रचनाक्रम के विकास को भी प्रत्यक्षीकृत करने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

इससे ज्ञात होता है कि आचार्यश्रीजी ने इस दस धर्मों के छन्दों की रचना ४.०३.१९७१ के पूर्व की होगी। पूज्य ज्ञानसागरजी महाराज भी आरम्भ से ही मुनि विद्यासागरजी से प्रवचन करवाते थे, अतः सम्भव है कि यह रचना १९६८ या १९६९ में रची गई होगी।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दश धर्म

श्री शान्तिनाथ! मुनिनाथ अनाथनाथ।
दिव्या कृपा लघुमतौ मभि तेऽस्तु देव॥
क्षिप्रं यया सुविषमात् भवकाननाद्वा।
एष्यामि किं ननु ततो हतधीर्नपारम् ॥

उत्तम क्षमा धर्म

नारी न्यारी इस जगत में एक ही शोभनीया।
सोने सी जो अतिचामचमी दीखती है सुरूपा॥
लक्ष्मी भी तो द्रुतनिदटती सामने है इसी के।
अच्छी संज्ञा इस युवति की जो क्षमा कर्णमोदा ॥१॥

नाभी सूनू अरु महति भी तीर्थ कर्त्ता ऋषी भो!
ज्ञानी ध्यानी श्रमणवर भी अन्त में और चक्री॥
पैरों में जा शरण इसकी ले बने सिद्ध शुद्ध,
हे भव्यात्मा चरण पकड़ो सुक्षमा के सयाने॥२॥

उत्तम मार्दव धर्म

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

छोड़ो तोड़ो वर अहित को मान को दुष्ट को भी।
मारो पीटो विषभटित को मानरूपी अही को,
थोका देके उपरितल से मान को औ गिरा दो,
या आगी में पटक करके मान को भो! जला दो॥३॥

लोनी लोनी किसलय समा चित्त को रे! बना ले।
तृष्णा हो तो सुवृषपय को चाव से पी बुझा ले॥
ऐसा दूजा वर धरम को भव्य तू साध ले रे!
क्योंकी देखो! सुशिव सुखदा और कोई नहीं है॥४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

उत्तम आर्जव धर्म

(मालिनी छन्द)

जब विकसित होता सूर्य पूर्वा दिशा में।
तब तम टल जाता भूमि से हेलया ही॥
जब सुशमित माया आप में पूर्णता से।
तब अति ऋजु वाला धर्म आता खुशी से ॥५॥

जब हिमकर आता रात्रि में चन्द्रिका ले।
तब विकसित होते रात्रि उल्लास कंज॥
जब विष सम माया लोप होती नरों में।
तब ऋजु वृषरूपी दूधधारा जनों में ॥६॥

यदि तुम सुख पाना चाहते हो सदा ही।
अरु भव जलधी से चाहते पार होना॥
प्रथम यह सुनो भाई महावीर वाणी।
तज वितथ विमाया जो अती कष्टदायी ॥७॥

उत्तम शौच धर्म

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

चौथा आया अब धरम जो शौच्य संज्ञा विशिष्ट।
ऐसा कोई इस अवनि पे सौख्यदाता नहीं है॥
सेवा पूजा त्रयकरण से औ इसी की करो भो!
धारो, भाओ सुअवसर है शौच्य से मुक्ति पाओ ॥८॥

कर्मों का है अधिपति बड़ा मोह कर्म प्रचण्ड।
जैसा राजा पशु निचय का सिंह है सुप्रतापी॥
जीवात्मा को प्रचुर धन को छीनता आ रहा है।
सच्चा वैरी परम दुःखदा जीव का मोह तो है ॥९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

हे भव्यात्मा! अवसर मिला है अतः चेत जा तू तो।
ले लो जल्दी इक सुकर से शौच्यरूपी असि को॥
या तो लेके विषम शर को जो अती तीक्ष्ण होवे।
मारो जल्दी अति महत को मोहरूपी अरी को ॥१०॥

उत्तम मार्दव धर्म

(मालिनी छन्द)

जय जय जय बोलो धर्म की सत्य की भो!
यदि तुम शिव पाना चाहते सत्य बोलो॥
इह पर सुखदा है कीर्ति कर्त्ता विधाता।
त्रिभुवन इह कोई सत्य जैसा नहीं है ॥११॥

जब सुन वसुराजा सत्य को तोड़ डाला।
तव रव रव भारी सातवें नर्क पाया॥
निशिदिन अति होती है जहाँ वंदना रे!
वितथ वचन का तो पाक भाई यही है ॥१२॥

जब कब तुम बोलो सत्य के साथ बोलो।
अरु निज शिशुवों को सत्य का पाठ देओ॥
यदि मरण हि आता पास में आपके है।
पर सुधरम को ना सत्य को छोड़ देना ॥१३॥

६. उत्तम संयम धर्म

(मालिनीछन्द)

यह नर तन भारी कष्ट से रे मिला है।
यह सुकृत का है पाक भाई अनूठा॥
अमर तरसते हैं जो इसी के लिए ही।
पर तुम इसका ना मूल्य भी जानते हो ॥१४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

चश्मा आया नयन तलपे हाथ ना दीखता है।
टेड़ी मेड़ी कमर अब तो बैठना रे न होता॥
खाँसी खौं खौं कफ जम गया वक्ष में श्वास थोड़ा।
तो भी चाबी कमर तल से छूटती ना कभी भी॥१५॥

(मालिनी छन्द)

यदि नर तन का है लाभ लेना चाहता तू।
द्रुत उर धर जो तू है छठा धर्म साधू ॥
यदि इस भव से है छूटना चाहता तू।
जिन वच यह मोही! संयम श्रेष्ठ पा तू ॥१६॥

उत्तम तप धर्म

(मालिनी छन्द)

यदि निज तनु जाती आज ही या सबेरे।
अरु वह जल जाती अग्नि से तप से भी॥
यदि सुन पिट जाती लट्ठ से मल्ल से या।
अरु अति सड़ जाती कोढ़ से रुग्न से भी ॥१७॥

पर यह जड़ तो मैं चेतनात्मा अनूठा।
अविरल मुनि ऐसा जो लखेगा सुधीठा॥
अथच अचल होके आत्म में लीन हो तो।
वह तप उसका है मोक्षदाता अनोखा॥१८॥

(शिखरिणी छन्द)

सुनो स्वामी मेरे मुझ पर दया तुम करो।
कृपा भाण्डारी हो तुम जिन यहाँ परम जी॥
अरू ज्ञाता दृष्टा परम सुखदा अजितजी।
सुशक्ति देवो जी परम तप मैं इह करूँ सदयजी ॥१९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

उत्तम त्याग धर्म

(मालिनी छन्द)

विषम विषय को रे! बावला त्याग दे तू।
सुचिर समय से क्यों पा रहा कष्ट है तू॥
जब जिनवर नाभी सूनु मोचा इसी को।
तब इस रिपु को क्यों स्थान है दे रहा तू॥२०॥

(वसन्ततिलका छन्द)

है रोग का यह सुनो भुवि में प्रदाता।
औ मृत्यु को दुःखद को यह है दिलाता॥
है ख्याति लाभ यश को द्रुत भी शमाता।
ऐसा प्रचण्ड विषयाहित मोचनीय॥२१॥

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

बाह्याभ्यन्तर वस्त्र कल्मष सभी को त्याग दे आशु।
हेतु हैं दुख का अतः सुखद को ये नाशते हैं सदा॥
संसारी सब जीव कष्ट सहते प्रायः इसी हेतु से।
मौका है इह छोड़ हे सुनर! तू आगे न मौका तुझे॥२२॥

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

जम्बू स्वामी विषय तज के त्याग धर्मानुगामी।
दीक्षा ले के सुतप तप के मोक्ष पाया सुयोगी॥
अन्तर्यामी अब तक सुनो मोक्ष जो जा चुके हैं।
वे सारे भो! इस धरम का धार ले के गये हैं ॥२३॥

उत्तम आकिंचन धर्म

(शिखरिणी छन्द)

पिता जामाता रे भवजलधि में ना शरण हैं।
सुनो माता भी तो स्व मतलब से ही बस रही॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तथा भ्राता पोता कुछ समय के हैं सहचरी।
यथा सन्ध्या में आ विहग वसते वृक्ष पर हैं ॥२४॥

सुता भी तेरी औ कल तनुज तेरे अहित हैं।
तथा कान्ता तेरी विषधर समा है मरणदा ॥
तुझे हे! भव्यात्मा सुवृष तज कोई शरण ना।
अतः भाई धारो परम वृष आकिंचन पना ॥२५॥

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

हे भव्यात्मा भवजलधि में तू अकेला सदा से।
गोता खाता परम दुख को भोगता आ रहा है॥
तेरी लक्ष्मी विपुल सुखदा ज्ञान तो है अकेला।
तू जल्दी से स्व पर बल से साध ले रे उसी को ॥२६॥

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

प्यारा बेटा मन वच सुनो बावली हो रही हूँ।
मेरी जी तो परम विकला खेद खिन्नातिखिन्ना॥
रोती बोली अति विलखती वीर को वीर की माँ।
जाना अच्छा नहीं सबको छोड़ के हाँ यहाँ से ॥२७॥

कैसे जीऊँ कुँवर अब मैं प्राण मेरे चले हैं।
खाना पीना विष सम मुझे दीखते हैं रसीले॥
रोजाना मैं तब वदन को देख के तृप्त होती।
काया मेरी अब मृदुल जो क्या नहीं लुप्त होगी? ॥२८॥

शादी तेरी अब तक नहीं तू कहाँ जा रहा है?
सूना होगा तब विरह से राज्य जो है विशाल॥
रोयेगी भी सकल जनता वेदना ना सहेगी।
डूबेगी हाँ रुदन करती शोकरूपी सरों में ॥२९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

देखो माँ जी इक हि ललना जो बची है सदा से।
मेरी शादी यदि ही करना चाहती तो खुशी से॥
मैं राजी हूँ, द्रुत तुम करो मोक्षरूपी रमा से।
ऐसा बोला परम सुकृती वीर देखो स्व माँ से ॥३०॥

मेरा जी तो शिव युवति से मेल है चाहता माँ।
वैसी स्त्री तो अब तक नहीं देखने को मिली माँ॥
ऐसी स्त्री की इस अवनियें है नहीं प्रोपमा माँ।
तो कैसा मैं तजकर उसे जी सकूँ मोद से माँ ॥३१॥

मीठी वाणी सुरस भरिता भूरि माँ को सुनाया।
औ भी अच्छे वचन कहके धैर्य माँ को दिलाया॥
आगे भाई! श्रमण बन के कर्म को भी खपाया।
मुक्तिश्री को स्व निकट अहो वीर देखो बुलाया ॥३२॥

क्या क्या गाऊँ इस धरम का गीत मैं मूढ़ तो हूँ।
मेरी जिह्वा कथन करना जानती ना सुभोली॥
हे भव्यात्मा! इस युवति को क्या नहीं चाहते हो?
आशा है तो दशम धरम धार ले के बुलाओ ॥३३॥

❑ ❑ ❑

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

स्फुट रचनाएँ

आचार्यश्री की 'विज्जाणुवेक्खा' कविता प्राकृत में है, जो ज्ञान का महत्त्व बतलाती है। 'अर्थ अनर्थेर मूल' तथा 'नदीर शीतल जल' इत्यादि नाम की कविताएँ बंगला भाषा में हैं, जिसमें से प्रथम कविता में कहा गया है कि द्रव्य ही संसार में अनर्थों की जड़ है। इनके अतिरिक्त एक कविता अंग्रेजी में भी उपलब्ध हैं 'माइ सेल्फ' जिसमें 'स्व' पर प्रकाश डाला गया है। अपनी मातृभाषा कन्नड़ में भी आपने कुछ कविताएँ लिखी हैं। कन्नड़ की एक कविता के साथ ये रचनाएँ मूल रूप में नागरी उच्चारण एवं अर्थ सहित यहाँ दी जा रही हैं।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विज्जाणुवेक्खा

(विद्यानुप्रेक्षा)

पणमिय पढमं पढमं पुण पुण्णापुण्णपइचत्तं।
पुण्णं पुराणपुरुसं परमं परमगइं सुपत्तं ॥१॥

अर्थ—सर्वप्रथम मैं उन पूर्ण पुराण पुरुष तीर्थंकर आदिनाथ को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने पुण्य तथा अपुण्य रूप पाप आदि को पूर्णतः नष्ट कर दिया है और परमगति रूप मुक्ति को प्राप्त कर लिया है ॥१॥

ववगयणियमयरयमय-मयपचयं गदं च गुणणिलयं।
वत्थुं पस्सदि वंदे पडिसमयठिदिवयजणणमयं ॥२॥

अर्थ—जिन्होंने निजकर्मरजरूपी समूह को दूर कर दिया है, जो गुणों के आगार हैं और जो प्रतिसमय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी वस्तु को जानते देखते हैं, ऐसे सर्वज्ञ/सिद्धों को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२॥

जिणवयणं सिवअयणं वत्थुसहावावलोयणे णयणं।
णिद्दिट्ठं उवणयणं तह्मा वरं मणो तं णयणं ॥३॥

अर्थ—मैं उन्हीं नयनों/नेत्रों को श्रेष्ठ मानता हूँ जिन्होंने वस्तु-स्वभाव के देखने-जानने में समर्थ जिनवचनरूपी शिव-अयन/शिव-मार्ग अथवा शिवरूप नयन प्रदान किए हैं, जो उपकरण के रूप में कहे गए हैं। वे नयन नयात्मक हैं ॥३॥

खाणि खु गदाणि दमणं कुणंति णणियणियत्थाणणुगमणं
समणं करोमि णमणं जादु लयं तेण भवभमणं ॥४॥

अर्थ—जिन्होंने इन्द्रिय-दमन कर/इन्द्रिय-वासनाओं पर विजय प्राप्त कर निज-स्थान/आत्मा में अनुगमन किया है और संसार के जन्म-मरण रूप भ्रमण को दूर कर दिया है, उन श्रमणों को मैं नमन करता हूँ ॥४॥

फलदि खलु समयसारं लहु णयदि विप्पलयं च संसारं।
णिच्छामि सग्गसारं वोच्छामि सुभावणासारं ॥५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—जिसकी अन्तिम परिणति समयसार है तथा जो संसार को शीघ्र ही समाप्ति की ओर ले जाता है, उस भावनासार/मुक्ति की मैं इच्छा करता हूँ, स्वर्गीय सुखों की नहीं ॥५॥

गोदं णिच्चमणिच्चं चित्तं पंचेदियसुहं ण णिच्चं।
णियचितं खलु णिच्चं इदि चिंतह चित्तेण णिच्चं ॥६॥

अर्थ—नीच-उच्च गोत्र नित्य नहीं है, विविध प्रकार के पंचेन्द्रिय सुख भी नित्य नहीं है। मेरा चित्त/मन या परिणाम ही नित्य है, इस प्रकार का चिन्तन करना चाहिए ॥६॥

वयसीलं खलु सग्गं सुहो सलिलकणं च गदं कुसग्गं।
संसारं तु समग्गं जाणंतो ति जादु समग्गं ॥७॥

अर्थ—जैसे कुश के अग्रभाग पर स्थित जलकण शीघ्र नष्ट हो जाता है वैसे ही स्वर्ग सुख भी नष्ट होने वाला है। अतः सम्यक् रूप से जागृत होकर संसार को पूर्णतः जानने का प्रयास करो ॥७॥

भवभीदबुहमहिदेहिं पडिभावाणं भवाहिमुक्के हिं।
भणियं पडिणियदं तं अहिणवभावेण भवणं हि ॥८॥

अर्थ—संसार से भयभीत बुधजनों और संसार सागर से पार होने वाले ऋषिजनों द्वारा जो प्रतिभाषित है, उसकी मैं प्रतिदिन भावना भाता हूँ। यही भावना संसार सागर से पार कराने वाली है ॥८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मूल बंगला-कविता

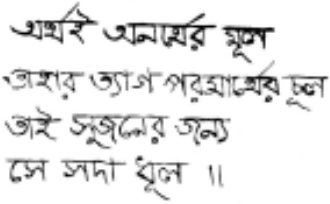

उच्चारण—अर्थ इ अनर्थेर मूल
ताहार त्याग परमार्थेर चूल
ताइ सुजनेर जन्य
से सदा धूल

अर्थ—अर्थ है अनर्थ का मूल
अर्थ का त्याग ही
परमार्थ शिखर को पाना है
सज्जनों के लिए वह अर्थ
सदा धूल के समान व्यर्थ है।

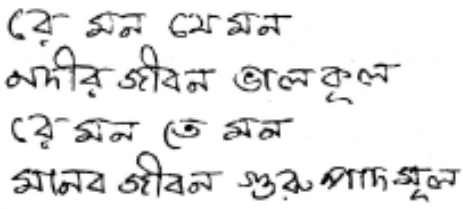

उच्चारण—रे मन जे मन
नदीर जीवन भाल कूल
रे मन ते मन
मानव जीवन गुरु पादमूल

अर्थ—नदी का जीवन ही दो तट हैं
वैसे ही हे मन! तेरा जीवन भी
गुरु-चरणों की संगति से ही
उन्नति की ओर जायेगा।

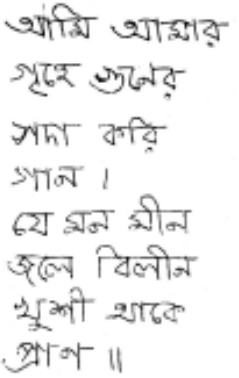

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

उच्चारण—आमि आमार
गृहे गुणेर सदा करि
गान।
जेमन मीन जले विलीन
खुशी थाके प्राण ॥

अर्थ—मैं मेरी आत्मा में
उसके गुणों का सदा
गुणगान करता हूँ।
जैसे कि जल में विलीन मीन
के प्राण खुश रहते हैं।

MY SELF

Oh! Passionlessness which is my naturl.
So I am myself certain best teacher...
Anent consciousness of imperfection
I have no pternal and real relation.
Objects of pleasure are like sharp razor
Whereby the soul deviates into danger.
My nature is free from deceitfulness
Because filled with sure uprightness.
I am the store of asset of knowledge
Sc I am free from attachment and rage.

अनुवाद—

मेरी चेतना

मम स्वभाव रहा वीतरागपना
नियम से मैं कुशल गुरु हूँ अपना।
अपरिपूर्ण चैतन्य के साथ कहीं
वास्तविक अमिट मम संबंध नहीं।
हैं विषय कषाय ये तीक्ष्ण कृपाण
तभी पीड़ित होते आतम प्राण।
कुटिलता से मम स्वभाव है दूर
पर ऋजुता से परिपूरित जरूर।
मैं उज्वल बोध-धन-धाम
तो राग-रोष का फिर क्या काम?

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

कन्नड कविताएँ

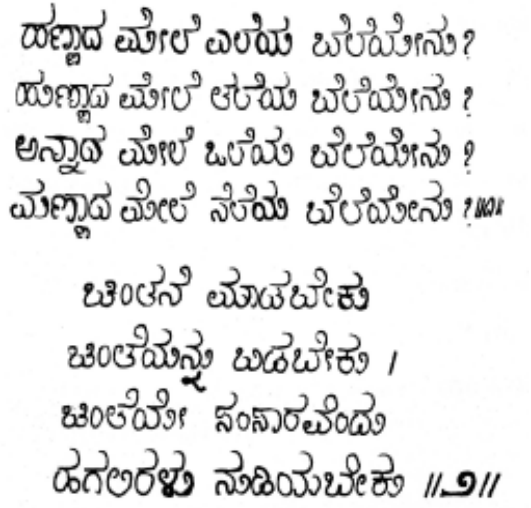
ಹಣ್ಣಾದ ಮೇಲೆ ಎಲೆಯ ಬೆಲೆಯೇನು?
ಹುಣ್ಣಾದ ಮೇಲೆ ತಲೆಯ ಬೆಲೆಯೇನು?
ಅನ್ನಾದ ಮೇಲೆ ಒಲೆಯ ಬೆಲೆಯೇನು?
ಮಣ್ಣಾದ ಮೇಲೆ ನೆಲೆಯ ಬೆಲೆಯೇನು? ॥೧॥

ಚಿಂತನೆ ಮಾಡಬೇಕು
ಚಿಂತೆಯನ್ನು ಬಿಡಬೇಕು।
ಚಿಂತೆಯೇ ಸಂಸಾರವೆಂದು
ಹಗಲಿರಳು ನುಡಿಯಬೇಕು ॥೨॥

उच्चारण— हण्णाद मेले एलेय बेलयेनु?
हुण्णाद मेले तलेय बेलेयेनु?
अन्नाद मेले ओलोय बेलेयेनु?
मण्णाद मेले नेलेय बेलेयेनु?॥१॥
चिन्तने माडबेकु,
चिन्तयेन्नु बिडबेकु।
चिन्तेये संसारवेन्दु,
हगलिरुळु नुडियबेकु॥२॥

अर्थ— पकने के बाद पत्ते का क्या महत्त्व?
मदान्ध होने पर बुद्धि का क्या महत्त्व?
रसोई बन चुकने के बाद चूल्हे का क्या महत्त्व?
मरण हो जाने के बाद जमीन आदि का क्या महत्त्व?॥१॥
चिन्तन करना चाहिए
चिन्ता छोड़ना चाहिए
चिन्ता ही संसार है
ऐसा दिन-रात सोचना चाहिए॥२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ಚಿಂತನೆ ಮೋಕ್ಷಕ್ಕೆ ಮೆಟ್ಟಿಲು
ಚಿಂತೆಯು ಮೋಹದ ಬೆಟ್ಟವು /
ಬೆಟ್ಟಿನ ಕಷ್ಟಕ್ಕೆ ಬೆನ್ನಿಡಬೇಕು
ಹೆಚ್ಚಿನ ಇಷ್ಟಕ್ಕೆ ಕಣ್ಣಿಡಬೇಕು॥೩॥

ಒಂದರಿಂದ ನಿಜ ಕರ್ಮವನ್ನು
ಆಮೂಲ ಕಡಿದಿಡಬೇಕು /
ಇನ್ನೊಂದರಿಂದ ನಿಜ ಧರ್ಮವನ್ನು
ಬಹುದೂರ ಕಡೆಗಿಡಬೇಕು ॥೪॥

ರಚನೆ:- ಆಚಾರ್ಯಶ್ರೀ ವಿದ್ಯಾಸಾಗರರು

उच्चारण— चिन्तने मोक्षक्के मेट्टलु,
चिन्तेयु मोहद बेट्टबु।
बेट्टिन कष्टक्के बेन्निडबेकु,
हेच्चिन इष्टक्कं कण्णिडबेकु॥३॥
ओन्दरिंद निजकर्मवन्नु
आमूल कडेदिडबेकु।
इन्नोन्दरिन्द निजधर्मवन्नु
बहुदूर कडेगिडबेकु॥४॥

अर्थ— चिन्तन मोक्ष का सोपान है
चिन्ता मोहरूपी पर्वत है
ऐसे पर्वत-सम-कष्ट की ओर पीठ करके
परमोत्कृष्ट अभीष्ट की ओर दृष्टि रखना चाहिए॥३॥
एक से अपने निजी कर्मों को
आमूलचूल काटना चाहिए
तो दूसरे चिन्तादिक परधर्म से
निजधर्म/स्वरूप को दूर रखना चाहिए ॥४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सर्वोदय अष्टक

सर्वोदय मम पन्थ हो, सर्वोदय-पाथेय।
सर्वोदय को नमन हो, सर्वोदय हो ध्येय ॥१॥

सर्वोदय ही पोत है, सर्वोदय सुख-स्रोत।
सर्वोदय को नमन हो, सर्वोदय वर ज्योत ॥२॥

सर्वोदय ही ग्रन्थ है, सर्वोदय निर्ग्रन्थ।
सर्वोदय को नमन हो, सर्वोदय अरहंत ॥३॥

सर्वोदय का गान हो, सर्वोदय का मान।
सर्वोदय को नमन हो, सर्वोदय वरदान ॥४॥

सर्वोदय गुणवन्त है, सर्वोदय ऋषि सन्त।
सर्वोदय को नमन हो, सर्वोदय जयवन्त ॥५॥

सर्वोदय में श्वास लूँ, सर्वोदय में वास।
सर्वोदय को नमन हो, सर्वोदय का दास ॥६॥

सर्वोदय को भूल ना, सर्वोदय भव-कूल।
सर्वोदय को नमन हो, सर्वोदय सुख-मूल ॥७॥

सर्वोदय में रमण हो, सर्वोदय में अन्त।
सर्वोदय को नमन हो, सर्वोदय पर्यंत ॥८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY